



● ताकि शिक्षा सही राह बढ़ती रहे ● प्राथमिक शिक्षा में मातृभाषा की महत्ता

● सरकारी स्कूल में शिक्षक ● शिक्षा और शिक्षकीय दायित्व ● कोरोना का बच्चों पर प्रभाव

# राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत की साहित्य और संस्कृति-पत्रिका



द्विमासिक

# पुस्तक संस्कृति



nbt.india  
एन.बी.टी. इंडिया

संपादक, पुस्तक संस्कृति

राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत

मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार  
नेहरू भवन, 5 इंस्टीट्यूशनल एरिया, फेज-II,  
वसंत कुंज, नई दिल्ली-110070 (भारत)

संपर्क : 91-11-26707758, 26707876

ई-मेल : editorpustaksanskriti@gmail.com

द्विमासिक पत्रिका का शुल्क एक अंक की कीमत ₹ 40.00

पंजीकृत डाक से भेजने के व्यय सहित वार्षिक सदस्यता ₹ 225.00 (भारत में) विदेश में ₹ 1000.00

सदस्यता शुल्क राष्ट्रीय पुस्तक न्यास के नाम ड्राफ्ट अथवा ई-बैंकिंग से भेज सकते हैं।

Bank : Canara Bank  
Branch : Vasant Kunj  
New Delhi-110070  
Acc.no.: 3158101000299  
IFSC : CNRB0003159

## पुस्तक संस्कृति अब निम्न स्थानों पर भी उपलब्ध है-

- गुलानी ब्रदर्स, 96 मॉल रोड, किंग्सवे कैम्प, दिल्ली-110009. फो.: 9312125847
- पांडे बुक स्टोर, 132, जी.जी. मेन रोड, जी.टी.बी. नगर के पास, गेट नं.4, मेट्रो स्टेशन, दिल्ली-110009. फो.: 011-49405845
- शुक्ला बुक स्टोर, जी.जी. मेन रोड, जी.टी.बी. नगर के पास, गेट नं.4, मेट्रो स्टेशन, दिल्ली-110009. फो.: 9953185805
- गीता बुक सेंटर, जे.एन.यू., गंगा छात्रावास के पास, न्यू कैम्पस, नई दिल्ली-110067. फो.: 9873352269
- जवाहर बुक सेंटर, पुस्तकालय भवन के पास, जे.एन.यू., नई दिल्ली-110067. फो.: 9818390503
- हेम बुक सेंटर, पुस्तकालय भवन के पास, जे.एन.यू., नई दिल्ली-110067. फो.: 9810985436
- सेंट्रल न्यूज एजेंसी प्रा. लिमिटेड, पी-20, कनॉट सर्कस, नई दिल्ली-110001. फो.: 011-41541111
- रामगोपाल एंड संस, शंकर बाजार, कनॉट सर्कस, नई दिल्ली-110001. फो.: 9427306159
- रोशन लाल एंड संस, 20, बंगाली मार्केट, नई दिल्ली-110001. फो.: 9811220234
- पांडे बुक स्टोर, लक्ष्मी नगर, यू-110, दिल्ली। फो.: 9717264572
- टॉपर्स लॉ हाउस, एल जी-2, यू-110, विकास मार्ग, दिल्ली। फो.: 011-47566672
- बुधनिया बुक शॉप, यू-86, दिल्ली। फो.: 9810174248

प्रधान संपादक

प्रो. गोविंद प्रसाद शर्मा

संपादक

पंकज चतुर्वेदी

सहायक संपादक

दीपक कुमार गुप्ता

संपादकीय सहयोग

विजय कुमार

विज्ञापन एवं प्रसार

कंचन वांचु शर्मा

उत्पादन

अनुज कुमार भारती, पवन दुबे

रेखाचित्र

संजीव कुमार

सज्जा/डिजाइन

ऋतुराज शर्मा, समरेश चटर्जी

शब्द संयोजन/कार्यालयीन सहयोग

प्रवीन कुमार, नीलकमल अरोड़ा

सदस्यता शुल्क

व्यक्तियों के लिए

एक प्रति : ₹ 35.00

वार्षिक : ₹ 225.00

(शुल्क भारत के लिए मान्य)

संपादकीय पत्र-व्यवहार

संपादक

पुस्तक संस्कृति

राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत

पता : नेहरू भवन, 5 इंस्टीट्यूशनल एरिया  
फेज-II, वसंत कुंज, नई दिल्ली-110070.

फोन : 011-26707876

ई-मेल: editorpustaksanskriti@gmail.com

प्रकाशक व मुद्रक अनुज कुमार भारती द्वारा  
नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया (राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत)  
नेहरू भवन, 5 इंस्टीट्यूशनल एरिया, फेज-II, वसंत कुंज,  
नई दिल्ली-110070 के लिए प्रकाशित और  
रेकमो प्रेस प्रा. लि. (कासना शाखा), आई-57, साइट-5,  
सूरजपुर कासना, ग्रेटर नोएडा-201310 (उ.प्र.) से मुद्रित।

संपादक

पंकज चतुर्वेदी

सर्वाधिकार सुरक्षित : प्रकाशित सामग्री के उपयोग के लिए  
लेखक और प्रकाशक की अनुमति आवश्यक है। प्रकाशित  
रचनाओं के विचार से प्रकाशक का सहमत होना आवश्यक नहीं  
है। राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत से संबंधित सभी विवादास्पद  
मामले केवल दिल्ली न्यायालय के अधीन होंगे।

## पुस्तक संस्कृति

साहित्य एवं संस्कृति की द्विमासिकी  
वर्ष-5; अंक-5; सितंबर-अक्तूबर, 2020

>> शिक्षा विशेषांक <<



### इस अंक में

संपादकीय	प्रो. गोविंद प्रसाद शर्मा	2
आलेख	ताकि शिक्षा सही राह बढ़ती रहे—रमेश पोखरियाल 'निशंक'	3
प्रयोग	शिक्षा के आधारभूत विषय हिंदी और गणित का पठन-पाठन—श्रीनारायण लाल 'श्रीश'	5
लेख	प्राथमिक शिक्षा में मातृभाषा की महत्ता—डॉ. आरती स्मित	9
लेख	शिक्षा के प्रतिमानों से साक्षात्कार कराती न्यास की अनूठी पुस्तकें—डॉ. रमेश तिवारी	13
स्मृति	शिक्षा-मनीषी डॉ. राधाकृष्णन का वह ऐतिहासिक उद्बोधन—भगवती प्रसाद गौतम	17
लेख	सरकारी स्कूल में शिक्षक—संजीव राय	20
अध्ययन	बच्चे कैसे सीखते हैं—सविता प्रथमेश	23
स्मृति	मेरी प्रारंभिक पाठशाला—डॉ. उषा यादव	26
लेख	बाल विकास का गुलदस्ता हैं सृजनात्मक पुस्तकें—शिव मोहन यादव	29
शब्द ज्ञान	आओ भारतीय भाषाएँ सीखें	32
लेख	अंग्रेजी शासन काल में पाठ्यपुस्तकों से भारतीय ज्ञान परंपरा का लोप : कारण व परिणाम—प्रो. गोविंद प्रसाद शर्मा	34
कहानी	तोमोए में पठन-पाठन—तेत्सुको कुरोयानागी	38
आलेख	विकलांग बच्चों की शिक्षा—डॉ. संध्या कुमारी	40
लेख	शिक्षा और शिक्षकीय दायित्व—सुरेश सोनी	43
समसामयिक	कोरोना का बच्चों पर प्रभाव—सुमन बाजपेयी	46
पुस्तक समीक्षा		49
साहित्यिक गतिविधियाँ		62



## राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020

21वीं शताब्दी के लिए 'राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020' शिक्षा क्षेत्र में मील का पत्थर साबित होगी। गहन विचार-विमर्श के साथ अभी तक के अनुभवों तथा वर्तमान में शिक्षा की स्थिति को ध्यान में रखकर भविष्य के भारत के लिए यह शिक्षा नीति बनाई गई है। इसका लक्ष्य ज्ञानयुक्त, समृद्ध भारत बनाना है, तथा वर्ष 2030 तक सभी के लिए समावेशी और समान गुणवत्तायुक्त शिक्षा सुनिश्चित करना है। अकादमिक दृष्टि से इस शिक्षा नीति में बहुत कुछ अच्छा है। यह समग्र है, भारत केंद्रित है तथापि स्कूली शिक्षा को केंद्र मानकर कुछ विशेष पहलुओं और विशेषताओं पर विचार किया जा सकता है।

'राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020' में स्कूली शिक्षा में बुनियादी सुधार सुझाए गए हैं। परिणामतः स्कूली शिक्षा का पूरा ढाँचा और परिदृश्य बदल जाएगा। संरचनात्मक दृष्टि से स्कूली शिक्षा वर्तमान 10+2 के स्थान पर 5+3+3+4 की नई व्यवस्था के अनुसार होगी, जिसमें शिशु वाटिका, आंगनबाड़ी सम्मिलित होंगी तथा छठी कक्षा से ही व्यावसायिक शिक्षा और इंटरशिप जुड़ी रहेगी।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति में शिशु परिचर्या एवं शिक्षा को गंभीरता से लिया गया है। इसे विद्यालयीन शिक्षा में 'फाउंडेशनल स्तर की शिक्षा' के रूप में कक्षा दो तक जोड़ा गया है। इस रूप में 'फाउंडेशनल शिक्षा' कक्षा दो तक मानी गई है। शैक्षणिक दृष्टि से यह सकारात्मक परिणाम देने वाली व्यवस्था सिद्ध होगी।

अध्ययन की दृष्टि से छात्र का मनपसंद विषय चुनना और संकायों की कठोर सीमाओं को उदार बनाना, छात्र को उसकी अभिरुचि के अनुसार उसकी प्रगति करने के अवसर प्रदान करेगा। छात्र कला, विज्ञान, वाणिज्य की किसी एक धारा को चुनने के स्थान पर अब इन धाराओं में से किसी भी विषय को चुन सकेगा। नई शिक्षा नीति में आर्ट्स-साइंस, करिक्यूलर,

एक्स्ट्रा करिक्यूलर और व्यावसायिक-शैक्षिक विषयों के बीच कोई अंतर नहीं होगा। विषयों के चयन में किसी एक संकाय तक सीमित विकल्प और जड़ता का अंत होगा।

यह स्वागत योग्य है कि शिक्षा नीति में भारतीय भाषाओं/मातृभाषा को महत्व दिया गया है। हालाँकि 1986 की शिक्षा नीति में त्रिभाषा फॉर्मूला में भी मातृभाषा/क्षेत्रीय भाषा के संबंध में प्रावधान था तथापि इस शिक्षा नीति में और भी स्पष्ट रूप से मातृभाषा के महत्व को स्थापित किया गया है। शिक्षा पर बाजार के दबावों के बावजूद मातृभाषा/क्षेत्रीय भाषाओं में प्राथमिक स्तर की शिक्षा देने की अनुशंसा भारत जैसे बहुभाषी देश में मातृभाषाओं का सम्मान तो है ही, वह भाषाओं के भविष्य में जीवित बने रहने के लिए भी आवश्यक है। विश्व के शिक्षाविद् मातृभाषा के महत्व को और उसमें शिक्षण को लेकर एकमत हैं। वे मातृभाषा के बिना स्कूल की कल्पना ही नहीं करते। यूक्रेन के शिक्षाविद् वसीली सुखेम्लीन्स्की का कहना है कि "एक स्कूल सच्चे अर्थों में संस्कृति का मंदिर केवल तभी बन पाता है, जब उसमें चार देवता प्रतिष्ठित हों—मातृभूमि, मनुष्य (शिक्षक और छात्र), पुस्तक और मातृभाषा।" स्पष्ट है कि विद्यालय की अवधारणा में अधोसंरचना का कम महत्व है, महत्व मातृभाषा और मातृभूमि का है।

एक भारतीय होने के नाते हमारे लिए यह गौरव की बात है कि शताब्दियों से उपेक्षित भारतीय ज्ञान परंपरा को शिक्षा में सम्मिलित करने और उसे सम्मानजनक स्थान देने की पहल राष्ट्रीय शिक्षा नीति में की गई है। इसके दीर्घकालीन परिणाम होंगे। हम अपनी समृद्ध ज्ञान परंपरा से तो परिचित होंगे ही, साथ ही हम मानसिक हीनभावना से भी मुक्त होंगे। दशाब्दियों से हमें यह पढ़ाया जाता रहा है कि ज्ञान का एकमेव स्रोत पश्चिम (यूरोप) रहा है। हमारे यहाँ ज्ञान था ही नहीं। यहाँ तक कि हमें हमारा इतिहास, हमारी संस्कृति, हमारी सभ्यता क्या है, यह भी पश्चिम के स्रोतों से और वहाँ के

विचारकों के लेखन से समझाया जाता रहा है। शिक्षाविद् डॉ. दौलत सिंह कोठारी का कहना था कि "भारत की शिक्षा भारत केंद्रित न होकर यूरोप केंद्रित है।" पर अब हम भारत केंद्रित शिक्षा के नए और बहुप्रतीक्षित युग में प्रवेश करेंगे। इसका परिणाम यह होगा कि हमारी शिक्षा यूरोप केंद्रित शैक्षिक और वैचारिक आभामंडल से बाहर निकलकर स्वयं अपने आभामंडल का निर्माण कर सकेगी और उसकी दमक विश्व में फैल सकेगी।

शिक्षा नीति के कार्यान्वयन में शिक्षक की भूमिका सबसे महत्वपूर्ण है। सब कुछ श्रेष्ठ है, पर शिक्षक कमजोर है तो अपेक्षित परिणाम नहीं निकल सकते। राष्ट्रीय शिक्षा नीति कहती है कि "शिक्षा व्यवस्था में किए जा रहे बुनियादी बदलावों के केंद्र में अवश्य ही शिक्षक होने चाहिए।" शिक्षा नीति में शिक्षक को सक्षम बनाने के लिए और उसकी प्रतिष्ठा को समाज में सम्मानजनक स्थिति में प्रतिष्ठित करने के लिए बहुत कुछ है।

स्कूल कॉम्प्लेक्स/क्लस्टर के माध्यम से कुशल संसाधन और प्रभावी गवर्नेंस की व्यवस्था, निजी और सरकारी स्कूलों सहित सभी स्कूलों में पारस्परिक सहयोग बढ़ाने की योजना, स्कूलों के मूल्यांकन और प्रमाणन के समान मापदंड आदि कुछ ऐसी व्यवस्थाओं के सुझाव दिए गए हैं जिसके परिणामस्वरूप स्कूली शिक्षा के परिदृश्य में सकारात्मक बदलाव आएगा।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020 सकारात्मक और उज्ज्वल भविष्य के लिए है। इसमें मनुष्य निर्माण और देश के विकास का संकल्प है। ज्ञान वैश्विक होता है, पर शिक्षा राष्ट्रीय होती है। निश्चित ही यह शिक्षा नीति राष्ट्रीय गौरव को बढ़ाने वाली और वैश्विक स्तर के योग्य छात्रों का निर्माण करने वाली सिद्ध होगी।

*गोविंद प्रसाद शर्मा*

(प्रो. गोविंद प्रसाद शर्मा)

प्रधान संपादक, पुस्तक संस्कृति



# ताकि शिक्षा सही राह बढ़ती रहे

संपूर्ण विश्व में कोरोना की वजह से सामाजिक स्वास्थ्य के लिए आपातकाल व अनिश्चितता का वातावरण बना हुआ है। दुर्भाग्य से विश्व के एक-तिहाई से अधिक लोग लॉकडाउन की वजह से घर पर बैठने को मजबूर हैं। त्रासदी का आलम यह है कि अत्याधुनिक अस्पतालों व उत्कृष्ट सामाजिक सुरक्षा वाले विकसित राष्ट्र आज कोविड-19 की पीड़ा से सबसे ज्यादा पीड़ित दिखाई दे रहे हैं। यह एक आकस्मिक व्यवधान के रूप में आया है। चाहे हमारे विद्यार्थी हों,



## रमेश पोखरियाल 'निशंक'

**जन्म :** प्रख्यात लेखक, कवि, शिक्षक, हिंदी सेवी श्री निशंक का जन्म पिनानी, पौड़ी, गढ़वाल, उत्तराखंड में हुआ।

**संप्रति :** शिक्षण के साथ वे साहित्यिक गतिविधियों में भी सक्रिय रहे। वर्तमान में वे भारत सरकार में मानव संसाधन विकास मंत्री हैं।

**लेखन :** हिंदी साहित्य की तमाम विधाओं—कविता, उपन्यास, खंड काव्य, लघु कहानी सांस्कृतिक, पर्यटन, यात्रा वृत्तांत, बाल कहानी सहित 60 से अधिक पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं।

**सम्मान :** मॉरिशस के सर्वोच्च सम्मान 'भारत गौरव सम्मान' सहित हिंदी गौरव सम्मान, साहित्य भूषण सम्मान आदि।

अध्यापक हों या अभिभावक, कोई भी इसके लिए तैयार न था। भौतिक संसाधनों की दृष्टि से और प्रशिक्षित मानव संपदा की दृष्टि से भी हम पूरी तरह से तैयार नहीं थे। आज के कठिन दौर में हमारे लिए नया पाठ्यक्रम बनाने और शिक्षाविदों को प्रौद्योगिकी अपनाने हेतु प्रेरित करना एक बड़ी चुनौती है।

संकट की इस घड़ी में हमारी शिक्षा-व्यवस्था से जुड़े हरेक शख्स ने जिस समर्पण, धैर्य का परिचय दिया है, वह प्रशंसनीय है। हमारे शिक्षण संस्थान बंद हैं, लेकिन हमारे योद्धा दिन-रात जुटे हैं। अत्यंत कुशल रणनीति का सृजन कर हमारे संस्थान विषम परिस्थितियों में भी जहाँ निर्बाध रूप से शैक्षणिक गतिविधियाँ चला रहे हैं, वहीं सबका आत्मविश्वास और मनोबल बनाए रखकर उत्कृष्ट कार्य कर रहे हैं। शिक्षा के क्षेत्र में एक नए युग के सूत्रपात के संकेत मिलने लगे हैं।

हाल में ही इस महामारी से बेहतर मुकाबले के लिए प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी द्वारा प्रोत्साहन पैकेज की घोषणा एक महत्वपूर्ण पहल है। इससे समूचे शैक्षिक जगत में नए उत्साह का संचार होगा। प्रधानमंत्री के नेतृत्व में गुणवत्तापरक और ऑनलाइन शिक्षा नियामक ढाँचे का उदारीकरण करके हम सुनिश्चित कर रहे हैं कि कोई भी विद्यार्थी शिक्षा के अवसर से वंचित न रहे। देश के सर्वोच्च 100 विश्वविद्यालय ऑनलाइन पाठ्यक्रम शुरू कर पाएँगे, जिससे हमारे देश के विभिन्न क्षेत्रों में युवाओं को उच्च शिक्षा के बेहतरीन अवसर मिलेंगे। बच्चों में साक्षरता और संख्यात्मकता योग्यता विकसित करने के लिए हम अनेक कदम उठा रहे हैं, इसके लिए शिक्षक क्षमता निर्माण के साथ ही एक मजबूत पाठ्यक्रम संरचना तैयार की जा रही है। आकर्षक शिक्षण सामग्री को ऑनलाइन और ऑफलाइन, दोनों ही स्तर पर बेहतर परिणाम के लिए

विकसित किया जा रहा है। उच्च गुणवत्तायुक्त ई-कॉन्टेंट और क्यूआर कोड वाली पुस्तकों के माध्यम से विद्यार्थियों को वैश्विक प्रतिस्पर्धा के लिए तैयार किया जा सकेगा।

इस विकट संकट से उबरने के लिए हमारे 1,000 विश्वविद्यालय और 45,000 महाविद्यालय व एक करोड़ अध्यापकों का नेटवर्क

“ कक्षा एक से 12 तक के लिए एन.सी.ई.आर.टी. का वैकल्पिक शैक्षणिक कैलेंडर तीन भाषाओं में जारी किया गया है, ताकि छात्रों की पढ़ाई समयबद्ध तरीके से चलती रहे। एक देश-एक डिजिटल प्लेटफॉर्म के तहत शिक्षा को संगठित करते हुए लाखों छात्रों द्वारा ई-दीक्षा, ई-पाठशाला, स्वयं प्रभा, नेशनल डिजिटल लाइब्रेरी, शोध गंगा और ई-शोध सिंधु का इस्तेमाल ऑनलाइन शिक्षा के रूप में बखूबी किया जा रहा है। यू.जी.सी. द्वारा समुचित बदलाव करते हुए नया शैक्षणिक कैलेंडर भी जारी किया गया है। इसके अतिरिक्त हर एक विश्वविद्यालय में कोविड-19 सेल की स्थापना की जाएगी। ”

प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से अपनी सेवाएँ दे रहा है। व्यापक विचार-विमर्श की प्रक्रिया के बाद हमने कई अहम फैसले लिए हैं। कक्षा एक से नौ और 11वीं कक्षा के छात्रों को बिना परीक्षा पदोन्नति देने का निर्णय लिया गया। छात्रों के बीच असमंजस और अस्थिरता दूर करने के लिए हमने छात्रों की सुरक्षा और हित को ध्यान में रखते हुए फैसले लिए हैं। कक्षा 10 और 12 के 83 में से बचे हुए 29 विषयों की परीक्षा जल्द ही होगी। हमारा पूरा प्रयास है कि सभी नए शैक्षणिक सत्र जल्दी ही शुरू हों। सभी लक्ष्य समयबद्ध तरीके से छात्रों की सुरक्षा से समझौता किए बिना हासिल किए जाएँ, इसके लिए सभी स्तर पर जरूरी व्यवस्थाएँ की जा रही हैं।

जो छात्र अपने परीक्षा केंद्र पर पहुँचने की स्थिति में नहीं हैं, वे अपने जिले के परीक्षा केंद्रों पर ही परीक्षा दे सकेंगे। इसीलिए इंजीनियरिंग, मेडिकल इत्यादि प्रतियोगी परीक्षाओं को देरी से कराने का निर्णय लिया गया है। कक्षा एक से 12 तक के लिए एन.सी.ई.आर.टी. का वैकल्पिक शैक्षणिक कैलेंडर तीन भाषाओं में जारी किया गया है, ताकि छात्रों की पढ़ाई समयबद्ध तरीके से चलती रहे। एक देश-एक डिजिटल प्लेटफॉर्म के तहत शिक्षा को संगठित करते हुए लाखों छात्रों द्वारा ई-दीक्षा, ई-पाठशाला, स्वयं प्रभा, नेशनल डिजिटल लाइब्रेरी, शोध गंगा और ई-शोध सिंधु का इस्तेमाल ऑनलाइन शिक्षा के रूप में बखूबी किया जा रहा है। यू.जी.सी. द्वारा समुचित बदलाव करते हुए नया शैक्षणिक कैलेंडर भी जारी किया गया है। इसके अतिरिक्त हर एक विश्वविद्यालय में कोविड-19 सेल की स्थापना की जाएगी। विश्वविद्यालयों के टर्मिनल सेमेस्टर के अलावा सभी छात्रों को पिछले सेमेस्टर के आंतरिक मूल्यांकन और प्रदर्शन के आधार पर ग्रेड प्रदान

करने की व्यवस्था की गई है। छात्रों की माँग पर आई.आई.टी./आई.आई.आई.टी. में ट्यूशन फीस में कोई बढ़ोतरी नहीं करने का निर्णय लिया गया है।

आज देश में ‘स्टडी इन इंडिया’ कार्यक्रम के तहत लगभग 45,000 से ज्यादा विदेशी छात्र शिक्षा ले रहे हैं, सरकार उनका भी ध्यान रख रही है। इसके अलावा जिन भारतीय छात्रों ने विदेश में शिक्षा के लिए आवेदन किया था और कोविड-19 के चलते वे नहीं जा पाए, उनके भविष्य को ध्यान में रखते हुए उनके लिए अलग से जे.ई.ई. की परीक्षा आयोजित करने का निर्णय लिया गया है, ताकि उनके शैक्षणिक वर्ष को बरबाद होने से बचाया जा सके।

हमारी पूरी कोशिश है कि कोरोना महामारी के समय में भी देश में पढ़ने-लिखने का माहौल बना रहे। साहित्य का हमारे जीवन में विशेष महत्व है। अच्छी किताबें हमारी दोस्त होती हैं, इस सिद्धांत पर ‘माई बुक माई फ्रेंड’ अभियान शुरू किया गया है। और हर्ष की बात है कि बड़ी संख्या में छात्र, शिक्षक, घरेलू महिलाएँ, बुजुर्ग व बड़ी शिष्यवर्तों भी इस मुहिम से जुड़ी हैं और लोग किताबें पढ़ने के लिए प्रेरित हो रहे



हैं। आज चारों ओर कोविड-19 के सामाजिक और मनोवैज्ञानिक दुष्प्रभाव देखने को मिल रहे हैं, इस विषय की गंभीरता को देखते हुए ही मनोदर्पण पोर्टल बनाया गया है, जो आने वाले दिनों में हमारे सभी छात्रों की मनोवैज्ञानिक समस्याओं का निदान करने में कारगर होगा।

प्रधानमंत्री के नेतृत्व में आत्मनिर्भर भारत निर्माण के वास्ते पाँच ट्रिलियन डॉलर की अर्थव्यवस्था को प्राप्त करने के लिए और कोविड-19 के कारण शिक्षा के सामने आने वाली तात्कालिक चुनौतियों का सामना करने के लिए हमें बदलाव की जरूरत है। एक ऐसा बदलाव, जो हम नए भारत के निर्माण हेतु तैयार कर सकें। हमारी गुणवत्तापरक और प्रौद्योगिकी युक्त शिक्षा इस बदलाव को लाने में उत्प्रेरक की भूमिका निभाएगी।





# शिक्षा के आधारभूत विषय हिंदी और गणित का पठन-पाठन

भले ही शिक्षा (सीखना) विद्यार्थी की बुद्धिलब्धि के आधार पर फलवती होती है अर्थात् सीखना, सीखने वाले पर निर्भर करता है, न कि सिखाने वाले पर। किंतु शब्द चाहे जो प्रयोग करें—अधिगम/सीखना, शिक्षा प्राप्ति/प्रशिक्षण प्राप्ति, यहाँ दो प्रमुख पक्ष तो हैं ही—शिक्षक और शिक्षार्थी। यहाँ दोनों पक्ष एक-दूसरे को दोष देकर बच नहीं सकते। शिक्षक का यह कहना कि विद्यार्थी हर दृष्टि से विपन्न है, कमजोर है, उसे कुछ नहीं आता, उसे प्राथमिक स्तर तक का ही



## श्रीनारायण लाल 'श्रीश'

जन्म : 01 जनवरी, 1950

अमेठी (उत्तर प्रदेश)।

शिक्षा : एम.ए., बी.एड.।

संप्रति : सेवानिवृत्त हिंदी प्रवक्ता।

प्रकाशन : आधा दर्जन से अधिक पुस्तकें प्रकाशित।

सम्मान : राज्य अध्यापक पुरस्कार-2010 (उ.प्र.), जायसी स्मृति सम्मान (उ.प्र.), डॉ. देवराज स्मृति सम्मान (उ.प्र.)।

संपर्क : मोबाइल— 967069933,

6307194224

ईमेल— shrinarainalshresh@gmail.com

कुछ ज्ञान नहीं है तो उसे जूनियर कक्षा, हाई स्कूल या इंटर, बी.ए. में क्या और कैसे पढ़ाया जाए? अथवा विद्यार्थी का यह कहना कि अध्यापक का कहा हुआ/पढ़ाया हुआ हमारी कुछ समझ में नहीं आता। शिक्षक ने हमें यह पाठ, यह विधि, यह भाषा, यह गणित का पाठ ऐसा नहीं पढ़ाया कि अमुक पाठ्य वस्तु हमें स्पष्टतः बोधगम्य होती।

उक्त समीक्ष्य विषय का तात्पर्य ही है कि हम शिक्षकगण ही विचार करें कि क्या हम अपने दायित्व का निर्वहन ठीक प्रकार कर पा रहे हैं। ईश्वर को साक्षी मानकर केवल और केवल हम अध्यापक ही यह विचार करें कि हम अपना अध्यापन कार्य सही दिशा में कर पा रहे हैं या नहीं। (निहाई और हथौड़ी में पहले क्या बनी या मुर्गी या अंडा में पहले कौन) इस विवाद में न पड़कर आत्मालोचन/आत्म साक्षात्कार करें और अपनी पाठित सामग्री का सम्यक् बोध

कराने का, दायित्व सफल बनाने का भरसक सार्थक प्रयत्न करें। चूक कहाँ हो रही है, खोजें और समस्या का निस्तारण हम शिक्षक ही करेंगे तभी विद्यार्थीगण का, समाज का, देश का कल्याण होगा।

शिक्षा प्रणाली, शासकीय और व्यक्तिगत व्यवस्था में दोष, पाठ्यक्रम का दोष, वेतन या पारिश्रमिक का कम होने का रोना, व्यक्तिगत प्रबंध समितियों की प्रताड़ना या निरंकुश होना, विद्यार्थी का पारिवारिक/ सामाजिक स्तर न्यून होना जैसे कितने ही कारक हैं जिन पर प्रत्यक्ष चिंतन हम अध्यापक प्रायः करते रहते हैं। शासकीय विद्यालयों में यह कथन कि हमें शिक्षणेतार कार्यों में जैसे—मिड-डे मील, विद्यालय वेश, चुनाव ड्यूटी, पाठ्यपुस्तक वितरण (अभाव), जनगणना जैसे अनेक दूसरे कार्यों में लगा दिया जाता है जिसके कारण हमारा शिक्षण दायित्व प्रभावित होता है।

क्या—

1. हम वर्णमाला के वर्णों का परिचय सम्यक् रूपेण दे पाते हैं?
2. हम अंकों की पहचान बच्चों को करा पाते हैं?
3. हम प्रारंभिक कक्षाओं के पाठ के पूर्व आवश्यक तैयारी (अपना गृहकार्य) करते हैं ।
4. हम वर्णों के शुद्ध आकार पर ध्यान देते हैं?
5. हम श्याम पट अथवा छात्रों की पुस्तिकाओं पर शुद्ध रूप से अक्षर-शब्द मात्राएँ लिख उन्हें शुद्धता की जानकारी देते हैं?
6. हम गणित के प्रारंभिक पाठ अंक ज्ञान/पहचान तथा मौलिक संक्रियाएँ बताते समय बच्चों को सक्रिय रख पाते हैं?
7. हम जूनियर तथा हाई स्कूल कक्षाओं की विभिन्न उपशाखाओं में किसी शाखा या शाखाओं की उपेक्षा तो नहीं कर देते?

उपर्युक्त प्रश्नों/जिज्ञासाओं की स्वीकारोक्ति हम बड़ी कठिनाई से कर सकेंगे ।

हिंदी सहित किसी भाषा के पठन-पाठन का पुस्तकों में लिखित जो भी उद्देश्य हो, उसकी विशद चर्चा की गई हो, परंतु मुझे विश्वास है कि भाषा का उद्देश्य पढ़ना, लिखना, बोलना और समझना, ये चार ही हैं ('विशद' से सामान्य अर्थ विस्तृत का ही लगाते है, परंतु स्पष्ट, स्वच्छ, निर्मल, सारगर्भित भी इसके अर्थ हैं ।)

जब उपर्युक्त चार ही उद्देश्यों की पूर्ति (छात्र-छात्राओं की उद्देश्य पूर्ति में सफलता) हम चाहते हैं तो स्वयं भी आकलन करें कि क्या हम अध्यापक भी शुद्ध रूप से पढ़-लिख-बोल या समझ पाते हैं?

बोलने के पहले धीरे-धीरे अक्षर, मात्राएँ पहचानकर पढ़ना और फिर कई बार अभ्यास के बाद शुद्ध बोलना यदि बच्चों को सिखाना चाहते हैं तो इन शब्दों के उच्चारण हम स्वयं भी करें ।

**अशुद्ध**—असमर्थ, आशीर्वाद, प्रशंसा, परीक्षा, अध्यच्छ, कच्छा, अध्यन, उपलब्ध, निरपराध, उत्रीण आदि को शुद्ध बोलने का हम स्वयं संकल्प लें—

**शुद्ध**—असमर्थ, आशीर्वाद, प्रशंसा, परीक्षा, अध्यक्ष, कक्षा, अध्ययन, उपलब्ध, निरपराध, उत्तीर्ण आदि ।

यहाँ ध्यातव्य एक और बिंदु 'स/श के उच्चारण की समस्या' भी विशेष सोचनीय है—

1. समाज, संसार, सज्जन, स्रोत, सृष्टि—स युक्त
2. शरद, शशि, शांति, शिशु, शिखर—श युक्त
3. स्वदेश, सुशील, सुयश, सुदर्शन, प्रशासन—स-श युक्त
4. इष्ट, अभिषेक, भाषा, दुष्ट, श्रेष्ठ, विषम—ष युक्त

हम स्वयं भी प्रयास करें और अपने विद्यार्थियों का उच्चारण भी प्रारंभ से (प्राथमिक स्तर से) शुद्ध कराएँ ।

**क्ष/छ/च्छ** के उच्चारण की समस्या भी जटिल है । प्रायः **कच्छ**, **परिच्छा**, **कच्छा**, **अध्यच्छ**, **प्रतिच्छा** कहने/बोलने वाले शिक्षक हमें

मिल जाएँगे जो अशुद्ध शब्द हैं । उन्हें **कक्ष**, **परीक्षा**, **अध्यक्ष**, **कक्षा**, **प्रतीक्षा** की तरह क्या सब अध्यापक गण बोल पाते हैं?

निश्चय ही नहीं । जब शिक्षक ही नहीं बोल पाएँगे तो विद्यार्थी कैसे शुद्ध सीखेंगे?

**'शुद्ध लिखना' नामक उद्देश्य की पूर्ति भी क्या हो रही है?**

**अशुद्ध रूप**—आर्शिवाद, अंतर्गत, द्वारा, शुद्ध, साहित्यिक, कालीदास, प्रशंसा, शृंगार, सहस्त्र, बुद्धवार, दधीच, सामान्तर, सामाग्री, सौहार्द, उत्तीर्ण, पियूष, पूजनीय, उज्ज्वल लिखने वाले अध्यापक बच्चों को यही लिखना सिखाएँगे जो अशुद्ध हैं ।

**शुद्ध रूप**—इन्हें क्रमशः आशीर्वाद, अंतर्गत, द्वारा, शुद्ध, साहित्यिक, कालिदास, प्रशंसा, शृंगार, सहस्त्र, बुधवार, दधीचि, समांतर, सामग्री, सौहार्द, उत्तीर्ण, पीयूष, पूजनीय, उज्ज्वल के रूप में लिखना चाहिए ।

**समझना/समझाना—**

जब हम स्वयं शुद्ध न लिख पाते हैं, न बोल पाते हैं तो संधि, प्रत्यय, उपसर्ग, समास, विलोम, पर्याय, तद्भव, तत्सम शब्द विज्ञान, वाक्य विज्ञान जैसे तथ्यपरक अध्याय/प्रकरण हम कैसे सिखा पाएँगे?

आवहु सब मिलि के रोवहु भारत-भाई ।

हा-हा हिंदी दुर्दशा न देखी जाई ।।

**सुलेख एवं श्रुतलेख भी एक समस्या है या नहीं—**

यह विचारणीय है तो मुझे यह अनुभव है कि अधिकांश लोग (छात्र/छात्रा या वयस्क जन भी) दो शिकायत करते हैं कि—

1. हमारी गणित बहुत कमजोर है ।
2. हमारी सुलेख (राइटिंग) नहीं बनती ।

गणित की कमजोरी दूर करने का उपाय न्यूनाधिक इसी लेख में चर्चा का विषय बना है । पुनः गणित के गीतों से भी गणित की कमजोरियों को दूर करना संभव बन पाया है ।

## सुलेख (राइटिंग) के लिए कुछ उपाय

### स्थूल उपाय

1. हिंदी का लेख छपी पंक्ति के नीचे हो।
2. शिरोरेखा एक बार में लगाएँ।
3. बीच का अंतराल समुचित हो।
4. अक्षरों की दिशा लंबवत हो।

### सूक्ष्म उपाय

1. अक्षरों की आनुपातिक संरचना पर विशेष ध्यान देकर र, ह, छ, क्ष, झ, द, ट, ठ, ड, ग, म, न, अ, और य आदि वर्ण लिखें।
2. अक्षरों/मात्राओं की आकृति जान-बूझकर न बिगाड़ें।  
उपर्युक्त का ध्यान दें तो आपका लेख 'सुलेख' बन जाएगा।

### गणित की दुर्दशा तो अकथनीय ही है—

अंकगणित, बीजगणित तो टेढ़ी-मेढ़ी विधि से कैसे भी पढ़ाई जा रही है। वहाँ पठन-पाठन में एक बड़ी दुर्व्यवस्था देखी जाती है कि प्राथमिक से 12वीं ही नहीं, बी.एस.सी. तक की गणित के प्रश्नों को अध्यापक स्वयं हल करके छात्रों से पूछता है— समझ में आ गया? छात्र-छात्राओं का परंपरागत उत्तर 'यस सर' ही होता है। जबकि वास्तविकता कुछ और ही होती है। अर्थात् कुछ भी समझ में नहीं आया।

उपर्युक्त से हटकर 'रेखागणित' की समस्या सुनामी-सी भयानक बनी हुई है। विषयवस्तु का स्पष्ट या अस्पष्ट किसी प्रकार का अध्यापन प्रायः कराया ही नहीं जाता। जहाँ कहीं अध्यापन होता भी है वही पूर्व व्यवस्थानुसार।

शिक्षक कथन मात्र करता है, विषय स्पष्ट नहीं होता है या फिर बलपूर्वक (जबरदस्ती) 'यस-सर' कहलवाने की परंपरा का निर्वाह मात्र होता है।

विषय का विस्तार न हो, इस रूप में अंततः अध्यापक क्या करे, क्या न करे, की स्थिति में कम-से-कम यह तो हो ही कि—

1. गणित पढ़े शिक्षक ही गणित पढ़ाएँ जिन्होंने नियमित कक्षा में रहकर अध्ययन किया हो। केवल उपाधिधारी शिक्षक गणित कैसे पढ़ा पाएँगे?
2. गणित की कक्षा प्रति मिनट छात्रों के सहयोग, उनकी सक्रियता से ही चले, यह परम आवश्यक है।
3. छात्रों का पूर्वज्ञान शिक्षक द्वारा जाँच-परख लिया जाना भी बहुत आवश्यक है।
4. छात्रों में गणित के प्रति रुचि पैदा करना स्वयं गणित शिक्षक का काम है।
5. छात्र 'स्वयं' कार्य करें। न किसी साथी की सहायता लें और न किसी भाई-बहन, माता-पिता, दादा-दादी की।
6. अध्यापक द्वारा सारे प्रश्न हल किए जाने और छात्रों से उत्तरवाने का काम उन्हें कुँ में झोंकने जैसा है।
7. सहायक सामग्री का प्रयोग यथास्थान बहुत उपयोगी है।
8. शिक्षक बिना तैयारी के कोई प्रकरण न पढ़ाएँ।

ऐसी असमर्थता क्यों? यह हम अध्यापकों के कारण। हमें यह उत्तरदायित्व लेना पड़ेगा। उनका भविष्य हमारे हाथ है। उन्हें प्रेरित करें। हम स्वयं तैयार हों और बच्चों को सही दिशा में आगे बढ़ाएँ।

### प्रारंभिक अंक गणित

प्रकरण	गीत	उदाहरण
संख्या पद्धति	<b>प्राकृत संख्या—</b> गिनने में जो काम आती हैं। प्राकृत संख्या कहलाती हैं।।	1, 2, 3...100...
	<b>अभाज्य संख्याएँ—</b> कुछ संख्याएँ यों होती हैं। स्वयं 'एक' से ही कटती हैं।। इनको हम 'अभाज्य' कहते हैं।। देखें किसे 'भाज्य' कहते हैं।।	2, 3, 5, 7, 11, 13,...
	<b>विभाज्य संख्याएँ—</b> जो संख्याएँ अन्य किसी से। कट जाती हैं आसानी से।। उनको हम 'विभाज्य' कहते हैं।। औरों को 'अभाज्य' कहते हैं।।	2, 4, 6, 8, 9, 12, 15, 16..

प्रकरण	गीत	उदाहरण
	<b>सम संख्या-</b> सम संख्या कोई होती कब? 'दो' से पूरा भाग लगे जब ।।	2, 4, 6, 8, 10, 12...
	<b>विषम संख्या-</b> संख्या वही 'विषम' कहलाती । 'दो' से पूरा भाग न पाती ।।	3, 5, 7, 9, 11...
	<b>परिमेय संख्याएँ-</b> भिन्न के रूप में लिखी जा सके । अंश व हर में लिखी जा सके ।। अंश व हर पूर्णांक रहेगा । हर में शून्य न कभी रहेगा ।।	1, 2, 8, 2/5, और शून्य
<b>विभाजन के नियम</b>	<b>2 से नियम-</b> संख्या कोई 'दो' से कटे कब? अंक इकाई का 'सम' हो जब ।।	12, 48, 234, 1140 आदि दो से विभाज्य है क्योंकि इकाई पर 2, 4, 6, 8 या 0 हैं ।
	<b>3 से नियम-</b> संख्या के हर अंक का, योग करें चितलाय । योग कटे यदि तीन से, संख्या भी कट जाए ।।	72, 111, 4632, 41613 आदि तीन से विभाजित होंगी क्योंकि अंकों के योग तीन से विभाज्य हैं ।
	<b>4 से नियम-</b> अंतिम दोनों अंक से, 'संख्या' जो बन जाए । यदि वह कटती 'चार' से, संख्या भी कट जाए ।।	124, 340, 1128, 3016 आदि 4 से विभाज्य हैं क्योंकि यहाँ अंतिम संख्या 24, 40, 28, 16 सभी चार से विभाज्य हैं ।
	<b>5 से नियम-</b> जिस संख्या का अंक इकाई । 'पाँच' रहे या 'शून्य' दिखाई ।। तो जब भाग 'पाँच' से देंगे । शेष सदा ही 'शून्य' बचेंगे ।	15, 40, 160, 375, 1165 आदि 5 से विभाजित होंगी क्योंकि इनके अंत में 5 या 0 दिखाई देता है ।
	<b>11 से नियम-</b> 'सम' स्थान अरु 'विषम' स्थल का । अंतर हो यदि 'शून्य' युगल का ।। या अंतर विभाज्य 'ग्यारह' से । 'ग्यारह' से विभाजित हो ऐसे ।।	संख्या 93643, 11 से विभाज्य है । यह जानने के लिए $9+6+3=18$ और $3+4=7$ , $18-7=11$ , अतः 11 से विभाज्य है ।

इसी प्रकार प्राथमिक से 10वीं स्तर के गणित के अनेक तथ्य गीतों में एवं प्रश्नों के उदाहरण लेखक की प्रकाशित एवं उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान द्वारा पुरस्कृत 'आओ गीत गणित के गाएँ' में उद्धृत किए गए हैं ।

निष्कर्षतः यही कहा जा सकता है कि विद्यार्थी के उज्ज्वल भविष्य के लिए परस्पर दोषारोपण करने की जगह तीनों घटक— शिक्षक, शिक्षार्थी, और समाज (अभिभावक) अपने-अपने उत्तरदायित्वों का उचित ढंग से निर्वहन करें तभी शिक्षा का वास्तविक विकास होगा ।

कठिन दायित्व हम शिक्षकों का ही है । हम ध्यान रखें कि—

1. पाठ के विकास में प्रतिपल विद्यार्थी सक्रिय रहें ।
2. विद्यार्थी की किसी जिज्ञासा का समाधान यदि तुरंत न कर सकें तो अगले दिन पूरी तैयारी से उसका समुचित समाधान करें । तत्काल आधे-अधूरे समाधान से उसे भ्रमित न करें ।
3. कक्षा चाहे छोटी हो या बड़ी, उनके अगले दिन के पाठ का विकास उचित रूप से करने के लिए हम अवश्य ही आज तैयारी कर लें तभी कक्षा में जाएँ ।





# प्राथमिक शिक्षा में मातृभाषा की महत्ता

“शिक्षा में भाषा ही सब कुछ नहीं है,  
लेकिन भाषा के बिना शिक्षा में सब कुछ; कुछ भी नहीं है।”

—वर्जीनिया वुल्फ

‘भाषा’ कहते ही हमारे समक्ष एक ऐसा सशक्त माध्यम उभर आता है जो अपने विभिन्न आयामों से हमें प्रतिपल सिखाता चलता है, फिर चाहे शिक्षण की वह प्रक्रिया सांकेतिक हो, मौखिक हो या लिखित... हम कुछ-न-कुछ सीखते ही चलते हैं।... और बच्चों में सीखने की लगन अपेक्षाकृत अधिक होती है, यदि उन्हें उचित वातावरण मिले...!

आरंभिक ‘शिक्षा’ कहते ही आँखों के सामने घर का चित्र खिंच जाता है और सामने दिखाई देती है माँ! प्रथम गुरु के रूप में दिखती माँ के साथ ही परिवार द्वारा शिशु से और परस्पर बोलने-बतियाने की



## डॉ. आरती स्मि

**संप्रति-संलग्नता** : स्वतंत्र लेखन, कविता, कहानी, आलोचना, समीक्षा, शैक्षिक विमर्शकार एवं सलाहकार के रूप में अनेक संस्थानों से संबद्धता, आकाशवाणी नाटक कलाकार, रेडियो नाटक, धारावाहिक एवं रूपक लेखन तथा विविध केंद्रों से प्रसारण, कविता, कहानी, साक्षात्कार द्वारा आकाशवाणी एवं दूरदर्शन से संबद्धता।

**व्यवसाय** : विविध संस्थानों के लिए स्वतंत्र रूप में अनुवाद, संपादन, समीक्षा; निर्देशन-प्रबंधन-बाल-विभाग, साहित्यायन प्रकाशन।  
**महासचिव** : साहित्यायन ट्रस्ट।

भाषा/बोली प्रत्यक्ष हो उठती है। शिशु अनायास और स्वभावतः सीखने लगता है, कभी गौण प्रतीत होने वाली महत्वपूर्ण बातें, और कभी संकेत से तो कभी अपनी तोतली जुबान से टूटे-फूटे शब्दों/वाक्यांशों में अपने भाव अभिव्यक्त भी करने लगता है। इसके लिए उसे किसी शिक्षक या अन्य संसाधनों की आवश्यकता नहीं होती, वह बिना अतिरिक्त मानसिक ऊर्जा खर्च किए आस-पास की विषयवस्तुओं का अवलोकन कर, उसका अनुसरण करके सीखता चलता है। घर की भाषा या संप्रेषण की भाषा, जिसे हम ‘मातृभाषा’ कहते हैं, के साथ आबद्ध शिशु का मस्तिष्क ही नहीं, उसका संपूर्ण व्यक्तित्व सहज रूप में विकसित होता रहता है। यहाँ गौरतलब है कि शिशु जब बोल नहीं सकता, तब भी वह सीखता है और उस समय उसके सीखने का आधार सुनना होता है। यानी वह जिस भाषा/बोली को अपने

आस-पास सुनता है, उसे धीरे-धीरे समझने लगता है। ध्वनि के साथ उसका मस्तिष्क तालमेल स्थापित कर, उसे अर्थबोध कराता है। शिशु अपनी बढ़ती उम्र में भाषा को सुनकर उसमें व्यक्त अर्थों के साथ मानसिक क्रियाएँ करता है, उसमें से अर्थ समझकर उसे महसूस करता है, साथ ही उसे अपने पूर्व ज्ञान से जोड़ता है। यही कारण है कि घर की भाषा बिना सिखाए सीख लेता है। और यही कारण है कि विश्व के दिग्गज शिक्षाविदों ने मातृभाषा को प्राथमिक शिक्षा के लिए सर्वोत्तम माना है। यहाँ प्राथमिक शिक्षा से तात्पर्य प्राथमिक विद्यालय में दी जाने वाली आरंभिक शिक्षा और क्रमशः उसके बढ़ते चरणों से है।

हालाँकि राष्ट्रपिता महात्मा गांधी ने कहा था, “अक्षर ज्ञान न तो शिक्षा का अंतिम लक्ष्य है और न उसका आरंभ। वह तो मनुष्य की शिक्षा के कई साधनों में से केवल एक साधन है। अक्षर ज्ञान अपने आप में शिक्षा नहीं है।”

बाधा तब उत्पन्न होती है जब बच्चे को घर और बस्ती से निकालकर अचानक एक नए वातावरण के हवाले कर दिया जाता है, जहाँ उसकी बोली या भाषा में न तो संवाद होता है और न ही उसके परिवेश से संबद्ध ज्ञान को महत्व दिया जाता है। महत्व तो दूर, ध्यान

“ **जैसा कि हम सभी अपने-अपने अनुभवों के आधार पर स्वीकारते हैं—कि बालक बाहर होने वाली क्रिया-प्रतिक्रिया को आत्मसात करके उनका अनुसरण करके सीखता है, जैसे—घर में या स्कूल में वह बड़ों के उठने-बैठने, हाव-भाव की नकल उतारता है और खुश होता है। यानी बच्चे को जिस कार्य को करने में खुशी मिलती है, वह उसे बार-बार करना चाहता है। इतना ही नहीं, जब बच्चे को मातृभाषा में अभिव्यक्ति के अवसर मिलते हैं तो वे कुछ नया सीखने को भी तत्पर होते हैं।** ”

ही नहीं दिया जाता। व्यक्तित्व विकास में रुकावट लाती है—विद्यालय में पढ़ाई जाने वाली इतर भाषा। तीन से सात वर्ष के बच्चों के लिए उस नई भाषा को सीखने में अपनी मानसिक ऊर्जा का एक बड़ा हिस्सा खर्च करना पड़ता है, जिसे उसने पहले सुना न हो या जिसमें विद्यालय के अतिरिक्त घर या मुहल्ले के लोग बात न करते हों। इससे उनके सीखने की गति मंद हो जाती है। इतना ही नहीं, कक्षा में अपने पूर्व ज्ञान को नई भाषा में अभिव्यक्त न कर पाने की स्थिति में ऐसे बच्चे चुप रहने को विवश होते हैं। कई बार शिक्षक द्वारा पूछे गए सरल प्रश्नों के उत्तर भी वे



सिर्फ इसलिए नहीं दे पाते क्योंकि वे नई भाषा में वाक्य संरचना नहीं कर पाते। शिक्षक भी एक-दो बार पूछने के बाद उन्हें मंदबुद्धि की उपाधि दे देते हैं। ऐसे बच्चों को स्कूल के आरंभिक दिनों में वर्णमाला और अल्फाबेट के भूत डराते हैं, बाद में गणित व अन्य विषय। यही कारण है कि ठेठ ग्रामीण इलाकों या आदिवासी इलाकों में जहाँ, दो कमरों में कक्षा पाँच तक पढ़ाई का कोरम पूरा करवाया जाता है और इसके लिए स्थानीय शिक्षक की जगह बाहर के शिक्षक नियुक्त किए जाते हैं, जिन्हें हिंदी या अंग्रेजी के साथ ही बच्चों की मातृभाषा या स्थानीय भाषा नहीं आती, तो ऐसे स्कूलों में छात्रों की संख्या घटती जाती है या भोजन के लोभ से आ रहे छात्रों का बौद्धिक विकास से कोई वास्ता नहीं होता।



संज्ञानात्मक विकास सिद्धांत के प्रतिपादक, स्विट्जरलैंड के चिकित्सा मनोविज्ञानी जीन पियाजे के अनुसार, बालक द्वारा अर्जित ज्ञान के भंडार का स्वरूप विकास की प्रत्येक अवस्था में बदलता है और परिमार्जित होता रहता है। पियाजे के इस सिद्धांत को ‘अवस्था का सिद्धांत’ भी कहते हैं।

पियाजे की बात को एक हद तक स्वीकारते हुए

रूसी मनोवैज्ञानिक लिव सिमन वाइगोत्स्की ने माना है, बच्चे के संज्ञानात्मक विकास को समझने के लिए उनकी भाषा को समझना जरूरी है। क्योंकि शैशवकाल से ही बच्चा अपने कार्यों के नियोजन एवं समस्या के समाधान में भाषा का इस्तेमाल औजार की तरह करता है। वाइगोत्स्की यह भी मानते हैं और जैसा कि हम सभी अपने-अपने अनुभवों के आधार पर स्वीकारते हैं कि बालक बाहर होने वाली क्रिया-प्रतिक्रिया को आत्मसात करके उनका अनुसरण करके सीखता है, जैसे—घर में या स्कूल में वह बड़ों के उठने-बैठने, हाव-भाव की नकल उतारता है और खुश होता है। यानी बच्चे को जिस कार्य को करने में खुशी मिलती है, वह उसे बार-बार करना चाहता है। इतना ही नहीं, जब बच्चे को मातृभाषा में अभिव्यक्ति के अवसर मिलते हैं तो वे कुछ नया सीखने को भी तत्पर होते हैं। शून्य से सात वर्ष की अवस्था तक के बच्चे अपने आप से अधिक बातें करते हैं या यों कहें कि बच्चे अपने विचारों को बोलकर सुनते हैं। इस तरह विचार आंतरिक वाणी की जगह लेते हैं। वाइगोत्स्की इसे ‘अंतरीकरण’ कहते हैं।

हाल के शोध से यह स्पष्ट हुआ है कि बाल-मस्तिष्क के एक भाग का विकास इस प्रकार होता है कि बच्चा मातृभाषा के जरिए सबसे पहले और जल्दी सीखता है। कालांतर में वह दूसरी या तीसरी



भाषा सीखने की क्षमता प्राप्त कर लेता है। किंतु यदि स्कूल के आरंभिक दिनों में ही उन पर नई भाषाओं का बोझ लाद दिया जाए तो उनके मस्तिष्क का वह विशिष्ट भाग धीरे-धीरे अवरुद्ध हो जाएगा।



ध्यान दें तो पाएँगे, कोठारी आयोग सहित अन्य कई आयोगों एवं समितियों की सिफारिशों के बावजूद प्राथमिक कक्षाओं में मातृभाषा में शिक्षा दे पाना आज तक संभव नहीं हो पाया। इसका एक कारण शिक्षा के क्षेत्र में भारत की बहुभाषाई स्थिति है। जनगणना में भाषा संबंधी आँकड़ों में दर्ज 122 भाषाओं में से 26 भाषाएँ ही ऐसी हैं जो प्राथमिक स्कूलों में शिक्षा का माध्यम हैं। 2001 की जनगणना में दर्ज 100 गैर-अधिसूचित भाषाओं में से छह ही प्राथमिक शिक्षा का माध्यम बन पाई हैं। भारत के तीन प्रमुख राज्यों—अरुणाचल प्रदेश, जम्मू-कश्मीर और नगालैंड में प्राथमिक शिक्षा अंग्रेजी में दी जाती है, जबकि उनकी मातृभाषा समृद्ध है।

दरअसल, कक्षा 1 में दाखिले के समय अधिकांश बच्चे केवल मातृभाषा जानते हैं, कुछ बच्चे स्थानीय भाषा बोल और समझ तो लेते हैं, मगर किताबी भाषा उनके पल्ले नहीं पड़ती, जैसे—दार्जिलिंग में



स्थानीय जन की मातृभाषा गोरखा है, मगर प्राथमिक शिक्षा अंग्रेजी और बांग्ला में देने की व्यवस्था है। मध्य प्रदेश-छत्तीसगढ़ के आदिवासी इलाके में बैगा, गोंड, अगारिया और कोल जनजाति की बड़ी आबादी मौजूद है, किंतु उनकी भाषा में प्राथमिक शिक्षा का कोई प्रावधान नहीं है, क्योंकि उनके आस-पास के इलाकों में या टीलों को छोड़कर, गाँवों में भूमिया कोल, बैगा, राजगोंड के साथ ही यादव और महार/चंद्रवंशी भी बड़ी संख्या में मौजूद हैं। हर गाँव में प्राथमिक विद्यालय तक नहीं, जहाँ हैं भी वहाँ शिक्षक और कमरे—दोनों कम हैं और ये सभी बच्चे दूर-दूर से उन्हीं सुविधाहीन स्कूलों में पढ़ने आते

हैं। त्रासद स्थिति तब उत्पन्न होती है जब वहाँ नियुक्त शिक्षक हिंदी/अंग्रेजी के साथ, बच्चों की मातृभाषा बिलकुल नहीं समझते। नतीजा संवादहीनता! ऐसी स्थिति में बच्चों के बौद्धिक विकास पर खतरा मंडराने लगता है। शिक्षक चाहकर भी बच्चों से घुल-मिल नहीं पाते और बच्चे चाहकर भी अपने पूर्व ज्ञान को प्रकट नहीं कर पाते। उनका अधिकांश समय किताब देखकर बिना समझे और अक्षर/अल्फाबेट पहचाने कॉपी में उतारने में जाता है। ऐसा



अधिकतर अंग्रेजी के मामले में पाया गया। आठवीं कक्षा तक बच्चे को उत्तीर्ण करना, बच्चों के लिए अभिशाप से कम नहीं। अंग्रेजी को लेकर इन इलाकों के कक्षा चार से छह तक के अधिकांश बच्चों की त्रासदी एक-सी मिली। बच्चों की किताब में अंग्रेजी प्रश्नोत्तर कलम से भरे थे, मगर बच्चे उन्हें पढ़ना नहीं जानते थे। पूछने पर एक समान उत्तर मिला, सर ने लिख दिया/सर ने देखकर उतार लेने को कहा। शिक्षकों से बात करने पर शिक्षक बगले झाँकते नजर आए। कुछ ने अपनी दूसरी विवशता जाहिर की।

मातृभाषा के प्रति यह उदासीनता कितनी खतरनाक है और मातृभाषा या स्थानीय भाषा की जगह अंग्रेजी में आरंभिक शिक्षा के कारण मन और मस्तिष्क कितने दबाव झेलता है, इसे गांधी ने अनुभव के आधार पर बताया। हरिजन सेवक में 09 जुलाई, 1938 को बापू ने लिखा कि 'बारह बरस की उम्र तक मैंने जो भी शिक्षा पाई, वह अपनी मातृभाषा गुजराती में ही पाई। उस समय मुझे गणित, इतिहास, भूगोल का थोड़ा-थोड़ा ज्ञान था।...हाई स्कूल में स्कूल मास्टर का काम विद्यार्थियों के दिमाग में ढूस-ढूसकर अंग्रेजी भरना था।...जितना गणित, रेखागणित, बीजगणित, रसायनशास्त्र और ज्योतिष सीखने में मुझे चार साल लगे, अगर अंग्रेजी के बजाय गुजराती में पढ़ा होता तो उतना मैंने एक साल में ही आसानी से सीख लिया होता! गुजराती का मेरा शब्दज्ञान कहीं ज्यादा समृद्ध हो गया होता और उस ज्ञान का मैंने अपने घर में उपयोग किया होता! लेकिन इस अंग्रेजी माध्यम ने मेरे और मेरे कुटुंबियों के बीच, जो अंग्रेजी नहीं पढ़े थे, एक बड़ी खाई खड़ी कर दी।...इस प्रकार, मैं अपने ही घर में बड़ी तेजी के साथ अजनबी बनता जा रहा था।...हमें और हमारे बच्चों को अपनी ही विरासत

बनानी चाहिए। अगर हम दूसरों की विरासत लेंगे तो हमारी अपनी नष्ट हो जाएगी।' ठीक ऐसा ही तर्क बालक नरेंद्रनाथ (स्वामी विवेकानंद) ने अपने शिक्षक के समक्ष दिया था, 'अभी मैं अपनी मातृभाषा में लिखे साहित्य को पढ़ना चाहता हूँ, देवभाषा संस्कृत को

“ कई प्रयोगों द्वारा यह सिद्ध हो चुका है कि मातृभाषा अन्य नई भाषा को सीखने में सीढ़ी का काम करती है। विद्यालय के आरंभिक वर्षों में मातृभाषा का बेहतरीन विकास होने पर दूसरी भाषा सीखने में मदद मिलती है। जरूरत है हमें निजी विद्यालयों के मोह से मुक्त होने और अपने बच्चों के स्वाभाविक विकास के लिए घर की भाषा से जोड़ने की, तभी वे घर से, संबंध से, समाज से और राष्ट्र से जुड़ पाएँगे। ”

गहराई से सीखना चाहता हूँ और अपने देश के बारे में जानना चाहता हूँ, यदि अभी से सारे विषय अंग्रेजी में पढ़ने पड़े तो हमारा बहुत सारा समय और ऊर्जा इसी को सीखने में नष्ट हो जाएँगे।'

सुप्रसिद्ध शिक्षाशास्त्री परमेश आचार्य ने लिखा, '19वीं सदी के अंत तक आते-आते हरप्रसाद शास्त्री, गुरुदास बनर्जी, रवीन्द्रनाथ टैगोर और लोकेन्द्रनाथ पालित ने पढ़ाई के माध्यम के रूप में मातृभाषा पर जोर दिया। 1929 की हार्टिंग कमेटी और 1937 की बूड एबॉट कमेटी ने भी पढ़ाई के माध्यम को मातृभाषा बनाए रखने पर जोर दिया।'

रवीन्द्रनाथ टैगोर ने अपने लेख 'शिक्षार स्वांगीकरण' में लिखा है, 'शिक्षा में मातृभाषा माता के दूध के समान है। ये सरल और सार्वभौमिक उद्गार मैंने बहुत पहले प्रकट किए थे और मैं उन्हें फिर दोहरा रहा हूँ जो उस समय अंग्रेजी शिक्षा के प्रभाव में थे, उनके कानों के लिए ये शब्द अप्रिय थे। यदि इन शब्दों का अभी भी कोई प्रभाव नहीं पड़ता तो मेरा विचार है कि लोग उसे बार-बार दुहराएँगे।'

प्राथमिक शिक्षा के लिए मातृभाषा की महत्ता सिद्ध करते ऐसे अनगिनत वक्तव्य पढ़ने-सुनने-समझने के बावजूद हम कितने सजग हो पाए हैं, यह जगजाहिर है। किंतु इस मुद्दे को ध्यान में रखकर ही



राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद (एन.सी.ई.आर.टी.) की 1961 में स्थापना की गई थी। विद्यालयी गुणवत्ता को बढ़ाने के लिए एन.सी.ई.आर.टी. द्वारा किए जा रहे प्रयासों में एक सजग प्रयास है...लैंग्वेज एंड लर्निंग फाउंडेशन (एल.एल.एफ.), दिल्ली द्वारा प्राथमिक विद्यालयों के शिक्षकों को इस रूप में प्रशिक्षित करने में सहयोग, ताकि दूर-दराज के ग्रामीण इलाकों/आदिवासी इलाकों में बने सुविधाहीन विद्यालयों की गुणवत्ता बढ़ जाए और कोई बच्चा विद्यालय आने से घबराए नहीं। एल.एल.एफ. का उद्देश्य छात्रों की मातृभाषा को सँजोते हुए, उनके पूर्व ज्ञान को भी अभिव्यक्ति का मार्ग देना है। जब छात्रों को अपनी भाषा में अपनी बात कहने का अवसर मिलता है तो उनकी झिझक मिटती है। वे बताते हैं कि उनकी बोली/भाषा में अमुक चीज को क्या कहते हैं या उनके उत्सवों में क्या-क्या होता है! शिक्षक जब स्थानीय भाषा में उनसे संवाद करते हुए धीरे-धीरे उन्हें हिंदी की ओर लाते हैं और शब्दों को डिकोड करके पढ़ाते हैं तो बच्चे सीखने में रुचि लेने लगते हैं। और शिक्षकों का यह आश्चर्यजनक अनुभव रहा कि मातृभाषा में अपनी बात कहने की स्वतंत्रता मिलने पर जो बच्चे पहले शिक्षक की किसी बात का जवाब नहीं देते थे, वे खुलकर जवाब देने लगे। और यह स्पष्ट होता चला गया कि दोष बच्चे की मंदबुद्धि का नहीं, भाषिक संप्रेषण का था। इससे एक और लाभ हुआ, बच्चे सहज रूप में एक-दूसरे से क्षेत्रीय शब्द और उनके अर्थ सीखते चले गए, इससे उनके शब्द भंडार में बढ़ोतरी हुई। एल.एल.एफ. ने कई राज्य सरकारों से भी अनुदान पाकर कई स्तरों पर प्रशिक्षण के कार्यक्रम चलाए हैं।



कई प्रयोगों द्वारा यह सिद्ध हो चुका है कि मातृभाषा अन्य नई भाषा को सीखने में सीढ़ी का काम करती है। विद्यालय के आरंभिक वर्षों में मातृभाषा का बेहतरीन विकास होने पर दूसरी भाषा सीखने में मदद मिलती है। जरूरत है हमें निजी विद्यालयों के मोह से मुक्त होने और अपने बच्चों के स्वाभाविक विकास के लिए घर की भाषा से जोड़ने की, तभी वे घर से, संबंध से, समाज से और राष्ट्र से जुड़ पाएँगे। भारतेन्दु की पंक्ति इसी विचार को पुष्ट करती है...

‘निज भाषा की उन्नति अहै सब उन्नति कौ मूल।’





# शिक्षा के प्रतिमानों से साक्षात्कार कराती न्यास की अनूठी पुस्तकें

राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत विभिन्न प्रकार की शृंखलाओं के तहत कई महत्वपूर्ण पुस्तकों का प्रकाशन करता रहा है। शिक्षा के क्षेत्र में भी ऐसी अनेक महत्वपूर्ण कृतियाँ हैं, जिन्हें हम शिक्षा के प्रतिमान के रूप में स्वीकार कर सकते हैं। ऐसी अनेक कृतियों के प्रकाशन का दायित्व न्यास ने बखूबी निभाया है और आज भी इस निरंतरता को बनाए हुए है। शिक्षा संबंधी अनेक उत्कृष्ट पुस्तकों के प्रकाशन द्वारा न्यास निरंतर बेहतर अध्ययन, चिंतन, मनन की सामग्री पाठकों को उपलब्ध कराता रहा है। ऐसी ही कुछ प्रमुख पुस्तकों का संक्षिप्त विश्लेषणात्मक परिचय यहाँ प्रस्तुत है—



## डॉ. रमेश तिवारी

हिंदी भाषा-साहित्य में एम.ए., एम.फिल., पी-एच.डी.। दिल्ली विश्वविद्यालय के विभिन्न महाविद्यालयों और एन.सी.ई.आर.टी. दिल्ली के क्षेत्रीय केंद्र क्षेत्रीय शिक्षा संस्थान, भोपाल में सहायक प्राध्यापक पद पर कार्य। हिंदी भाषा-साहित्य अध्ययन, चिंतन-मनन एवं लेखन में विशेष रुचि। हिंदी व्यंग्य एवं भाषा शिक्षण-प्रशिक्षण के क्षेत्र में उल्लेखनीय कार्य।

संपर्क: मोबाइल—9599456515, 9868722444  
ईमेल—vyangyarth@gmail.com

## पहला अध्यापक

### चिंगिज ऐटमाटोव

#### अनुवाद : भीष्म साहनी

हम सबके जीवन में अध्यापक की बहुत महत्वपूर्ण भूमिका होती है। रूसी भाषा की एक बहुचर्चित पुस्तक का हिंदी अनुवाद 'पहला अध्यापक' शीर्षक से न्यास ने प्रकाशित किया है। यह पुस्तक बचपन में बुनियादी साक्षरता मात्र सिखाने वाले अध्यापक की अपने विद्यार्थियों के प्रति समर्पण और संलग्नता का जीवंत चित्रण करती है। रूसी नेता लेनिन के जमाने के एक फौजी दुइशन द्वारा एक गाँव में जाकर बच्चों को पढ़ाने की पहल और उसके परिणामस्वरूप बाद में रूसी अकादमीशियन के रूप में ख्यातिप्राप्त आल्तीनाई सुलैमानोव्ना की अपने गाँव कुरकुरेव से बचपन की जुड़ी वे लोमहर्षक यादें हैं जिससे न वह ताउम्र उबर पाई, न ही पाठक इन घटनाओं को पढ़ने के बाद उबर पाएँगे। यह पुस्तक एक अध्यापक के समर्पण की कथामात्र नहीं है, बल्कि एक फौजी और एक नागरिक के दायित्वों का अपनी जान जोखिम में डालकर निर्वहन करने का अद्भुत संदेश भी है। पूरी पुस्तक आद्योपांत पठनीय और सहज-सरल भाषा-शैली में अनुवाद द्वारा प्रस्तुत की गई है।



## वन विद्यालय की कहानी

### चितरंजन दास

#### अनुवाद : बिचार दास 'सुमन'

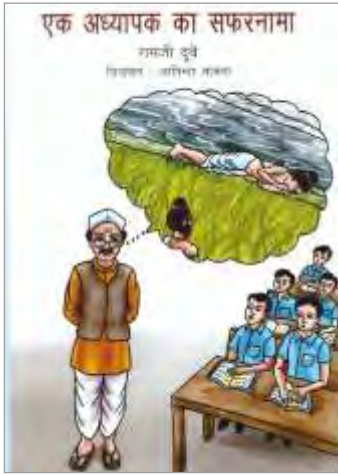
गांधी जी की बुनियादी शिक्षा के आदर्श रूप को 'वन विद्यालय की कहानी' पुस्तक के द्वारा पाठकों को परिचित कराया गया है। चितरंजन दास रचित इस पुस्तक का हिंदी अनुवाद विचार दास 'सुमन' ने किया है। यह पुस्तक पाँचवें दशक में उड़ीसा के जंगलों में स्थापित एक ऐसे वन विद्यालय की कहानी प्रस्तुत करती है, जिसमें सिद्धांतों की



अपेक्षा अनुभवों को व्यावहारिक धरातल पर उतारा गया है। पत्र-शैली में प्रस्तुत यह कृति वन विद्यालय के संचालन में आने वाली कठिनाइयों, शैक्षणिक प्रयोगों एवं आनंद के कई क्षणों से पाठकों का साक्षात्कार कराती है। शिक्षक और शिक्षार्थी के मध्य जो सहज संबंधों का सौंदर्य है, उसे यह कृति अद्भुत तरीके से व्यक्त करती है। इसमें पूर्वाग्रहों से ग्रस्त नौकरशाही को भी दिखाया गया है। कुल मिलाकर यह पुस्तक पाठकों को बाँधने और प्रभावित करने में सफल है।

## एक अध्यापक का सफरनामा

रामजी दूबे



अच्छी किताबों की कसौटी यह है कि वे प्रायः पाठकों के जीवन, चिंतन और व्यवहार को प्रभावित करती हैं। 'एक अध्यापक का सफरनामा' एक ऐसी ही पुस्तक के प्रभाव से रची गई है। लेखक ने इस पुस्तक की पृष्ठभूमि में लिखा है—“मैं यह वक्तव्य एक छोटी-सी पुस्तक के संदर्भ में दे रहा हूँ जिसने

मेरा कायाकल्प किया है। उस पुस्तक का नाम है—‘तोत्तो-चान’। यदि मैं यह कहूँ कि उसने मुझे एक साधारण मानव से रचनाकार बना दिया है तो इसमें कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। यह पुस्तक उसी का प्रतिफल है।” यानी तोत्तो-चान एक ऐसी पुस्तक है जिसका प्रभाव पाठक के मन-मस्तिष्क पर बहुत गहरे पड़ता है। और यदि पाठक का संबंध कहीं अध्ययन-अध्यापन से है तब तो वह और अधिक प्रभावी पुस्तक के रूप में असर डालती है। उल्लेखनीय है कि ‘तोत्तो-चान’ एक शिष्या द्वारा अपने गुरु की स्मृति और शिक्षा पद्धति को प्रभावी भाषा-शैली के साथ प्रकट करने वाली कृति है।

इस पुस्तक के लेखक ने अपने बचपन की आरंभिक कक्षा से लेकर विद्यालयी जीवन तक की कई महत्वपूर्ण स्मृतियों को बड़ी ही रोचक भाषा-शैली में प्रस्तुत किया है। ‘बच्चा क्लास’ से शुरुआत करते हुए एक ऐसे गुरु की स्मृति जो जाति व्यवस्था के हिसाब से सबसे निचले पायदान पर माना जाता है, के प्रति भी गाँव के लोगों का व्यवहार और लेखक की उनसे जुड़ी संस्मरणात्मक प्रस्तुति पाठकों को बाँध लेगी। ऐसे अविस्मरणीय अध्यापक श्री बच्चन राम

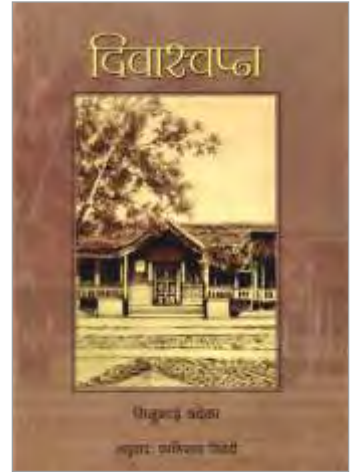
गुरु जी का प्रसंग और उनकी शिक्षा पद्धति आज के परिदृश्य में भी अनुकरणीय है। इसके अतिरिक्त हम जब आरुणी बने, कैसी-कैसी शरारतें, विज्ञान से कला की यात्रा, न्याय के लिए विद्रोह, गलती का अहसास, जब सर्पदंश से बचा, साँप-नेवले की लड़ाई, मुझे बिच्छू ने डंक मारा, सैनिक स्कूल झुमरी तिलैया की यादें, मैं क्रॉसकंद्री में अब्बल रहा आदि उपशीर्षकों से लिखे गए लेख हमें हमारी ग्रामीण संस्कृति और उसके मिजाज से भी परिचित कराते हैं।

## दिवास्वप्न

गिजुभाई बधेका

अनुवाद : काशिनाथ त्रिवेदी

गिजुभाई मूलतः गुजराती थे और अपने पुत्र की लिखाई-पढ़ाई के क्रम में भारतीय तत्कालीन शिक्षा पद्धतियों का अध्ययन कर काफी चिंतन-मनन के बाद बालकेंद्रित शिक्षा और बालदेवोभव का नारा बुलंद किया। गिजुभाई के शब्दों में “यह दिवास्वप्न मेरे जीवंत अनुभवों में से उपजा है, और मुझे



विश्वास है कि प्राणवान, क्रियावान और निष्ठावान शिक्षक अपने लिए भी इसे वास्तविक स्वरूप प्रदान कर सकेंगे।” भूमिका में वरिष्ठ शिक्षाविद कृष्ण कुमार इस पुस्तक का परिचय देते हैं कि यह पुस्तक पहली बार 1932 में प्रकाशित हुई और उसी वर्ष मध्य प्रदेश के शिक्षाविद काशिनाथ त्रिवेदी ने इसका हिंदी अनुवाद कर प्रकाशित किया। उनके शब्दों में “दिवास्वप्न एक ऐसे शिक्षक की काल्पनिक कथा है जो शिक्षा की दकियानूसी संस्कृति को नहीं स्वीकारता और परंपरा व पाठ्यपुस्तकों की सचेत अवहेलना करके बच्चों के प्रति सरस और प्रयोगशील बना रहता है। उसके प्रयोगों की सैद्धांतिक पृष्ठभूमि मॉटेसरी में है, पर तैयारी और क्रियान्वयन ठेठ देसी है।” इस पुस्तक में लेखक ने बच्चों के साथ किए गए अपने प्रयोगों को पाठकों से साझा किया है। प्रयोग का आरंभ, प्रयोग की प्रगति, छह महीनों के अंत में, अंतिम सम्मेलन शीर्षक से सभी प्रसंगों को चार खंडों में बाँटकर प्रस्तुत किया गया है। प्राथमिक शिक्षा से जुड़े प्रत्येक व्यक्ति को इस पुस्तक को पढ़ना चाहिए। यह पुस्तक प्रत्येक पाठक को बच्चों के प्रति अपेक्षित व्यवहार हेतु भली-भाँति प्रेरणा देती है।

## शिक्षा में सृजनात्मक नाटक एवं कठपुतली नर्तन

मेहर आर. कांट्रेक्टर

अनुवाद : हरवंस लाल लूथरा



यह पुस्तक शिक्षा, सामाजिक कार्य, मनोरंजन, व्यावसायिक सुधार और विचारों की प्रस्तुति के लिए श्रव्य-दृश्य शिक्षण की दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण है। इस पुस्तक की रचनाकार मेहर आर. कांट्रेक्टर कठपुतली नर्तन की आधिकारिक विदुषी थीं।

इन्होंने कई अंतरराष्ट्रीय

उत्सवों में भारत का प्रतिनिधित्व किया और कठपुतली नर्तन व सृजनात्मक कलाओं पर शिक्षकों के लिए प्रशिक्षण पाठ्यक्रमों का आयोजन किया।

इस पुस्तक में संगीत वाद्य, कठपुतलियाँ, रंगमंच के रेखाचित्र और विभिन्न सत्रों के फोटो चित्र आदि उपशीर्षकों में अध्यायवार विभाजित कर प्रस्तुत किए गए हैं। इस पुस्तक का लक्षित पाठक वर्ग एवं उद्देश्य आरंभ में ही 'परिचय' शीर्षक के अंतर्गत स्पष्ट किया गया है। "यह पुस्तिका उन लोगों के सामान्य मार्गदर्शन के लिए है जो कठपुतली नर्तन तथा सृजनात्मक नाटक के लिए प्रशिक्षण प्रणाली का संचालन करना चाहते हैं, अथवा इन तकनीकों का शिक्षा, सामाजिक कार्य, मनोविनोद, व्यावसायिक चिकित्सा तथा दृश्य-श्रव्य में प्रयोग करना चाहते हैं, ताकि वे अपने विचार प्रभावी ढंग से प्रौढ़ों एवं बच्चों तक पहुँचा सकें।"

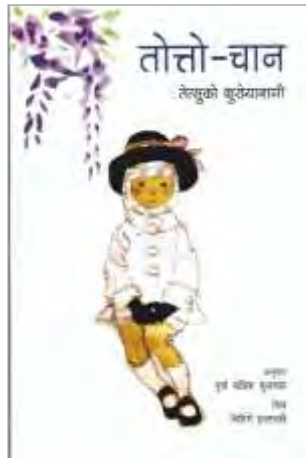
## तोत्तो-चान

तेत्सुको कुरोयानागी

अनुवाद :

पूर्वा याज्ञिक कुशवाहा

जापान में किसी महिला द्वारा लिखी यह पहली बेस्टसेलर है। जो लोग शिक्षा (विशेष कर प्राथमिक शिक्षा) से जुड़े हैं और बच्चों को शिक्षा देने के नए-नए तरीके को जानना-समझना चाहते हैं,



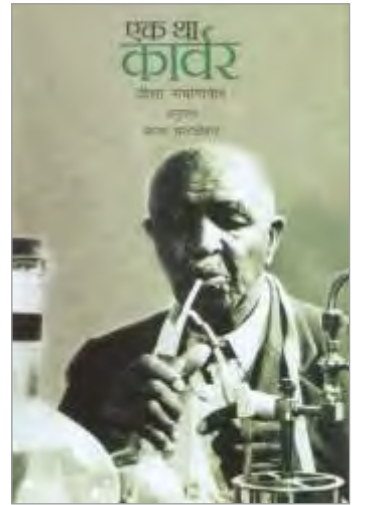
उन्हें यह पुस्तक जरूर पढ़नी चाहिए। यह एक ऐसी बच्ची की कहानी है जिसे पहली कक्षा में उसके स्कूल से निकाल दिया गया है। बहुत मुश्किल से एक स्कूल में नामांकन मिल पाता है। यह स्कूल क्या है, पूरी प्रयोगशाला है। कक्षा, पाठ्यक्रम, अध्यापक और अध्यापन प्रणाली आदि सब कुछ बिलकुल नया और अलग किस्म का है। तेत्सुको कुरोयानागी नाम की जापान की मशहूर टीवी कलाकार ने अपने बचपन के स्कूली अनुभवों को इस पुस्तक में समेटा है। भूमिका में लेखिका लिखती हैं, "बचपन में मैंने श्री कोबायाशी से वादा किया था कि मैं बड़े होने पर तोमोए में पढ़ाऊँगी। पर यह वादा मैं निभा न सकी। बदले में मेरी यह चेष्टा रही है कि मैं जितने भी लोगों को श्री कोबायाशी के बारे में बता सकूँ, बताऊँ। यह बताऊँ कि वे कैसे व्यक्ति थे, बच्चों को कैसा अथाह प्यार करते थे और उन्हें शिक्षित करने के कौन-कौन से रास्ते अपनाते थे।" श्री कोबायाशी ने पूरी दुनिया को तोमोए के द्वारा एक ऐसे विद्यालय की संकल्पना दी और वहाँ की विद्यालयी शिक्षा पद्धति के द्वारा ऐसी शिक्षा प्रणाली दी है जिसके केंद्र में केवल विद्यार्थी हैं। इसलिए प्राथमिक शिक्षा से जुड़े व्यक्तियों के लिए यह पुस्तक नियमित और अनिवार्य रूप से पठनीय है।

## एक था कार्वर

वीणा गवाणकर

अनुवाद : संध्या भाटलेकर

इस पुस्तक में अमेरिका के पहले अश्वेत कृषि वैज्ञानिक जॉर्ज वाशिंगटन कार्वर का जीवन संघर्ष बड़े ही मार्मिक और जीवंत रूप में प्रस्तुत है। आज संपूर्ण मानव जाति उपभोग की अदम्य लालसा के कारण जीवन के ऐसे खतरनाक मोड़ पर पहुँच गई है जहाँ हमारे सामने बस दो ही विकल्प



मौजूद हैं। एक तो आत्मघात का चिरंतन मार्ग है, दूसरा कार्वर के द्वारा दिखाया गया मार्ग है जिस पर चलते हुए हम प्राकृतिक संसाधनों का संरक्षण, संवर्धन, विकास, उपयोग और पुनर्निर्माण की शाश्वत कृषि संस्कृति को अपनाएँ। डॉ. कार्वर अश्वेत

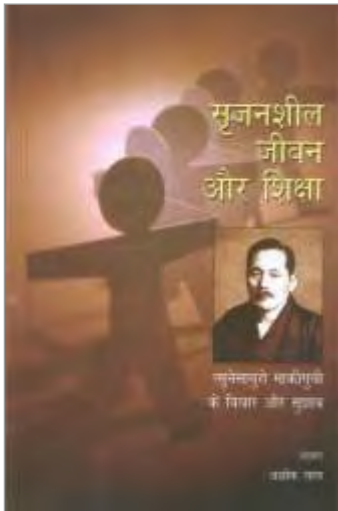
समुदाय के लिए ही नहीं, बल्कि समस्त मानव जाति के उत्थान के लिए अंतिम साँस तक प्रयासरत रहे।

अश्वेत होने के कारण कार्वर को भी अपने जीवन में अनेक बार अपमानित होना पड़ा। 'आरंभ का अंत' शीर्षक लेख में जॉर्ज के हायलैंड विश्वविद्यालय में दाखिले का प्रसंग बड़ा ही मार्मिक है। जॉर्ज जब विश्वविद्यालय अधिकारी के पास अपने नामांकन संबंधी कागज को दिखाते हैं तो उनके रंग के कारण अधिकारी कहता है कि कहीं कुछ गलती हो गई है। वह साफ-साफ कह देता है कि "नीग्रो छात्रों को यहाँ प्रवेश नहीं दिया जाता।" कार्वर आजीवन ऐसी ही पीड़ा को जीते रहे हैं। दुनिया में गैर-बराबरी को मजबूती देने वाली अमानवीयता के खिलाफ कार्वर का यह संघर्ष उनके जीवंत और मानवतावादी स्वरूप को दर्शाता है और यह पुस्तक ऐसे योद्धा के जीवन से हमारा साक्षात्कार कराते हुए हमें प्रेरणा देती है।

## सृजनशील जीवन और शिक्षा

त्सुनेसाबुरो माकीगुची के विचार और सुझाव

अनुवाद: अशोक लाल



जापान के बहुचर्चित प्रधानाचार्य त्सुनेसाबुरो माकीगुची के 20 वर्षों के अकादमिक कार्यों और अनुभवों को इस पुस्तक में दस्तावेज रूप में प्रस्तुत किया गया है। डेल.एम. बेथल ने माकीगुची के विचारों और सुझावों को इस पुस्तक में संपादित कर प्रस्तुत किया है। बेथल ने माकीगुची के

जीवन और शैक्षिक दर्शन पर शोध किया है। शिक्षक के लक्ष्य, मूल्य के बुनियादी तथ्य, शिक्षा को रोचकता यानी जीवंतता प्रदान करने का तरीका अथवा नीति, शैक्षणिक प्रविधि और शिक्षण सामग्री विषयक माकीगुची के विचारों को प्रामाणिकता के साथ संपादक ने संकलित-विश्लेषित कर पाठकों के समक्ष रखा है।

मूल जापानी संस्करण की भूमिका में लेखक ने पाठकों को मूल्य-सृजनात्मक शिक्षा-पद्धति का लक्ष्य बताते हुए कुछ प्रतिबंधों की पूर्ति का उल्लेख किया है, जैसे—अधिक मितव्ययिता और

निपुणता के समन्वय के लिए शिक्षा-पद्धति को सरल और कारगर बनाना। लेखक की मान्यता है कि अगर नीति और तकनीक दोनों में सुधार लाया जाए तो शैक्षणिक-समय, अध्ययन-समय, लागत समय इत्यादि सब पर व्यय आधा किया जा सकता है।

## हमारा क्या कसूर?

रेणु गावस्कर

अनुवाद: सतीश पेडणेकर

इस पुस्तक की लेखिका सुप्रसिद्ध मराठी साहित्यकार रेणु गावस्कर ने लगभग 14 वर्षों तक डेविड ससून इंडस्ट्रियल स्कूल में काम किया और वहाँ समाज से ठुकराए गए बच्चों को बेहतर इनसान बनाने और समाज की मुख्यधारा से जोड़ने के लिए निरंतर प्रयास किया है। यह पुस्तक



डेविड ससून इंडस्ट्रियल स्कूल के बच्चों के जीवन पर आधारित है। इस स्कूल के बारे में संक्षिप्त जानकारी भी भूमिका में दी गई है।

'आनंद ही आनंद' शीर्षक से एक अनुभव में लेखिका बताती हैं कि जब वे ऐसे बच्चों के कमरे में एक दिन गईं तो बहुत देर तक चुपचाप खड़े उनको देखते ही रहीं। जब बच्चों ने उनकी उपस्थिति को देखते हुए थोड़ी खामोशी बरती तो लेखिका ने पूछा कि कहानी सुनाऊँ? बच्चों में से एक जवाब मिला 'कहानी सुनानी हो तो रामायण-महाभारत की मत सुनाना।' लेखिका द्वारा यह पूछने पर कि कौन-सी कहानी सुनाऊँ? एक बच्चे ने कहा कि अमिताभ बच्चन की सुनाओ। लेखिका ने अमिताभ की सच्ची कहानी बताते हुए एक रोचक कहानी सुनाई। बच्चों की पसंद की कहानी सुनाते हुए लेखिका ने एक दिन हेलन केलर की कहानी सुनाने का प्रस्ताव रखा। यह एक शिक्षक और उसकी अंध-मूक-बधिर शिष्या की कहानी है। इस कहानी को सुनाने का अनुकूल परिणाम यह हुआ कि शोर-शराबा करने वाले बच्चे इस कहानी को सुनने के बाद लेखिका से आँखें बंद करके और मुँह पर हाथ रखे हुए मिलते। लेखिका से कुछ बच्चे अभिमान के साथ कहते, "हम हेलन केलर बनेंगे।" यही इस पुस्तक और लेखिका की सफलता है।





# शिक्षा-मनीषी डॉ. राधाकृष्णन का वह ऐतिहासिक उद्बोधन

अवसर था राजकीय महाविद्यालय, कोटा का स्वर्ण जयंती उद्घाटन-समारोह। दिनांक 18 फरवरी 1961, शनिवार। लब्धप्रतिष्ठ अतिथियों, जनप्रतिनिधियों, विद्वानों और संस्था के नए-पुराने छात्रों में सम्मान्य मुख्य अतिथि के पदार्पण को लेकर एक अजीब-सी जिज्ञासा थी। मुख्य अतिथि यानी बेजोड़ शिक्षा-मनीषी, अप्रतिम दर्शन-शास्त्री और भारतीय गणतंत्र के तत्कालीन उपराष्ट्रपति (1952-62) डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन जो बाद में दूसरे राष्ट्रपति पद (1962-67) को गौरवान्वित कर गए।



**भगवती प्रसाद गौतम**

जन्म : 28 सितंबर, 1943

शिक्षा : एम.ए. (चित्रकला), बी.एड.।

राज्य सेवा : अतिरिक्त जिला शिक्षा अधिकारी के पद से सेवानिवृत्त।

संप्रति : साहित्य-सृजन के साथ-साथ शैक्षिक-सामाजिक गतिविधियों में सक्रिय।

सृजन : छोटी-बड़ी आठ पुस्तकों सहित राष्ट्रीय स्तर की हिंदी पत्र-पत्रिकाओं में गीत, गजल, कविताएँ, लेख, कहानियाँ, व्यंग्य एवं बाल-रचनाएँ निरंतर प्रकाशित; आकाशवाणी से विविध रचनाएँ, वार्ताएँ, परिचर्चाएँ प्रसारित तथा बालगीतों का कैसिट (जिला प्राथमिक शिक्षा कार्यक्रम) लोकार्पित।

संपर्क : मो. - 9461182571

ईमेल - bpgautam.1943@gmail.com

मैं 1960-61 के कालखंड में महाविद्यालय की पीयूसी (Pre University Class) में अध्ययनरत था। उम्र रही होगी यही कोई 17-18 साल जब उस 'भारत रत्न' के साक्षात् दर्शन कर सका। मगर मानस पटल पर आज भी वह सौम्य छवि अंकित है—सिर पर सुशोभित साफा, हल्की पीली-दूधिया अचकन, सफेद झक्क धोती, गौरवर्ण मुख-मंडल पर फवता चश्मे का फ्रेम... यों कहे समग्र व्यक्तित्व अद्भुत एवं आभासिकत। गार्ड ऑफ ऑनर, सरस्वती वंदना, अभिनंदन गान, स्वागत-प्रतिवेदन आदि औपचारिक किंतु आकर्षक प्रस्तुतियों के क्रम में आरंभ हुआ चिंतन के धनी डॉ. राधाकृष्णन का मार्मिक उद्बोधन जो लगभग छह दशक के उपरांत भी शैक्षिक सरोकारों की दृष्टि से आज भी प्रासंगिक लगता है।

वैसे सुनियोजित-सुसंयोजित शब्दों में पिरोए हुए उनके भावों एवं विचारों का वह निर्झर ऐसे अद्भुत पलों की याद दिला देता है जिनमें लगता था जैसे उन्हें संपूर्ण विश्व के भविष्य का पूर्वाभास हो चुका हो, जैसे अपने उद्बोधन के बहाने वे भावी मानव-जीवन के समक्ष उपस्थित हो आने वाली शैक्षिक, सामाजिक और वैश्विक चुनौतियों की भविष्यवाणी ही कर रहे हों।



एक शिक्षण-संस्थान की स्वर्णजयंती के परिप्रेक्ष्य में दिए गए उनके संपूर्ण अभिभाषण का शाब्दिक प्रारूप मूलतः अंग्रेजी में ही था, किंतु भाषा सहज, सरल और हर तरह से सधी हुई थी। प्रयुक्त शब्दावली के उच्चारण, तान-अनुतान और बलाघात ने प्रस्तुति को सचमुच आदर्श बना दिया था। और तो और कहीं-कहीं संस्कृत व उर्दू-फारसी के स्पर्श से समग्र संबोधन ऐसा जीवंत और बोधगम्य बन पड़ा था कि उसकी प्रतिध्वनि, उसकी अनुगूँज सदैव भीतर तक व्याप्त-सी प्रतीत होती है।

डॉक्टर साहब जीवनपर्यंत शाश्वत मूल्यों के पक्षधर रहे। उन्होंने अपनी एक पुस्तक 'स्वीकारोक्ति के अंश' में भी इस तथ्य को रेखांकित किया है कि वे लगभग 30 वर्ष तक विश्वकवि रवींद्रनाथ टैगोर और महात्मा गांधी के निकट संपर्क में रहे। यह भी संयोग ही रहा कि अपने व्याख्यान से पूर्व उन्होंने महात्मा गांधी के आदमकद

व्यक्तिचित्र का अनावरण भी किया। वे गांधी को एक भारतीय आत्मा के रूप में नहीं, बल्कि वैश्विक आत्मा के रूप में पूजते थे। उन्होंने वैसा ही सम्मान देते हुए उद्बोधन में उन्हें खासतौर पर याद किया और कहा—“We must remember that the great people of the world like Gandhi are not bound down by their environment. They are not merely the creatures of necessity. They are not products of the happenings outside but they bring to the moulding of the environment, a new vision and a new idea.”

वे मानते थे कि सच्ची आधुनिकता किसी कालखंड से नहीं, वरन् सार्थक सोच से प्रतिपादित होती है और वह व्यक्ति की स्वतंत्रता में ही निहित है, अतीत की गुलामी में नहीं। सच तो यह है कि समृद्ध समाज की इमारत समृद्ध चिंतन की नींव पर ही खड़ी होती है। उन्हीं के मतानुसार, “जिस प्रकार के समाज की हम संरचना

“ शिक्षा ‘निरंतरता में परिवर्तन और परिवर्तनों में निरंतरता’ का प्रतीक है। यह विकास की प्रक्रिया ही मनुष्य या आमजन की मुक्त आत्मा की अभिव्यक्ति है। इसलिए उनके सपनों का शिक्षक भी प्रतिबद्ध व्यक्ति ही रहा है... ‘एक ऐसा व्यक्ति जो दूसरे व्यक्ति को आत्मिक प्रकाश से भर सके तथा रुग्ण समाज को रोगमुक्त कर सके।’ ”

करना चाहते हैं, व्यक्ति की गरिमा व समानता के मूल्यों पर आधारित जिस प्रजातंत्र को हम गढ़ना चाहते हैं, उसमें शिक्षा को नैतिक चुनौतियों का सामना करना होगा और उसे विमुक्तकारी और जीवन-दायिनी भी होना होगा।”

यों भी शिक्षा ‘निरंतरता में परिवर्तन और परिवर्तनों में निरंतरता’ का प्रतीक है। यह विकास की प्रक्रिया ही मनुष्य या आमजन की मुक्त आत्मा की अभिव्यक्ति है। इसलिए उनके सपनों का शिक्षक भी प्रतिबद्ध व्यक्ति ही रहा है... ‘एक ऐसा व्यक्ति जो दूसरे व्यक्ति को आत्मिक प्रकाश से भर सके तथा रुग्ण समाज को रोगमुक्त कर सके।’

याद आता है कि डॉ. राधाकृष्णन ने अभिभाषण के आरंभ में बड़ी ही सहजता के साथ तत्कालीन मा. मुख्यमंत्री और महाराव साहब की लोकप्रियता को उजागर करते हुए सुधी जनसमूह को बताया कि वे इससे पूर्व भी 1944 में कोटा-प्रवास पर रहे और बोले—“16 वर्ष के अंतराल में बहुत कुछ बदल गया है। पुराना, पुराना हो गया है, बीत चुका है और उसमें बहुत कुछ नया जुड़ चुका है। ऐसे में इस समारोह के अवसर पर उन सभी महानुभावों के संबंध में सोचा जाना स्वाभाविक है जिन्होंने इस प्रतिष्ठित संस्था को विगत समय में उल्लेखनीय सहयोग दिया है तथा जो आज भी आपके साथ जुड़कर विभिन्न क्षेत्रों में योगदान कर रहे हैं।”



खासियत यह है कि वे राजनीतिज्ञ नहीं थे, फिर भी राजनीति के संबंध में उनके विचार सर्वथा मौलिक एवं सुस्पष्ट रहे। वे राजनीति को केवल दिमागी स्तर का ही नहीं, बल्कि भावनात्मक स्तर का क्षेत्र भी मानते थे। अपने उद्बोधन में उन्होंने नेतृत्व-कौशल की धारणा को इन शब्दों में प्रस्तुत किया—“Leadership is not merely a question of getting to the top. It is a question of mind and heart.”

इसी विचार को आगे बढ़ाते हुए उन्होंने कहा था कि जब तक हमारे नेता या जन-प्रतिनिधि सही अर्थों में संवेदनशील नहीं होंगे, जब तक जन-समुदाय के दुख-दर्द में उनकी आत्मिक सहभागिता नहीं होगी, वे कुशल नेतृत्व एवं समुचित सम्मान के पात्र नहीं हो सकते। सच, नेतृत्व को वैयक्तिक विकास का नहीं, बल्कि सार्वजनिक सेवा का अमूल्य अवसर ही माना जाना चाहिए। उन्हीं के शब्दों में—“Anyone who occupies a position of leadership, must look upon it as an opportunity for service and not an opportunity for making a career for himself. That is that all our leaders should remember in these critical days.”

खुले दिल-दिमाग से आकलन किया जाए तो यह ऐसा अद्भुत एवं असाधारण व्याख्यान था जिसमें डॉक्टर साहब ने राष्ट्र की ही नहीं, विश्व की विभिन्न संस्कृतियों को दृष्टिगत रखते हुए समसामयिक राजनीति के साथ ही प्रचलित शिक्षा पद्धति, मानवीय मूल्यों, प्रजातंत्रीय प्रणाली और न्याय-व्यवस्था पर बेबाक अभिमत प्रस्तुत किए और राष्ट्रीय एवं वैश्विक जीवन के हर क्षेत्र में नैतिकता की आवश्यकता पर जोर दिया।

उल्लेखनीय है कि जब डॉ. राधाकृष्णन तत्कालीन सोवियत संघ में राजदूत (1949) रहे तब राष्ट्राध्यक्ष स्टालिन से हुई पहली औपचारिक भेंट के दौरान भी उन्होंने वैश्विक राजनीति में नैतिकता की आवश्यकता की पुरजोर वकालत की। कहा जाता है कि अति वाचाल एवं वाकपटु राजनेता स्टालिन ने उनकी बात को मूक श्रोता की तरह सुना। उन पलों में दुभाषिण को भी अधिकांशतः डॉक्टर

साहब के विचारों का ही अनुवाद करना पड़ा और भारत-रूस मैत्री की नींव पड़ गई।

“ किसी भी शिक्षा-परिसर में यह अनुभव किया जाना जरूरी है कि विभिन्न विषयों व विधाओं के अतिरिक्त भी व्यक्ति के व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास हो, उस ‘आत्मा’ का विकास हो जो अपने आप में मानवता को पुनर्जीवित करने की क्षमता संजोते हुए आगे बढ़े और प्रत्येक जड़-चेतन के प्रति अनुराग स्थापित करने की सतत प्रेरणा दे सके। ”

महाविद्यालय भवन के सम्मुख सजे मनोहारी मंच से प्रजातंत्रिय आदर्श (Democratic ideal) को व्याख्यायित करते हुए डॉक्टर साहब ने उसे एक ऐसा गैर-तानाशाही, गैर-सत्तावादी तंत्र (Non-dictatorial, non-authoritarian system) कहा जिसमें वैचारिक स्वतंत्रता का सर्वोपरि स्थान है। इसी परिप्रेक्ष्य में वे सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक न्याय की अपनी अवधारणा भी उजागर कर गए।

चंबल परियोजना (कोटा बराज, जिसका लोकार्पण कुछ दिनों पूर्व ही तत्कालीन प्रधानमंत्री पंडित नेहरू द्वारा किया गया था) का अवलोकन कर वे बड़े आह्लादित हुए। उसे भारतीय नागरिकों की चिंतना और कौशल का सर्वोत्तम उपयोग मानते हुए उन्होंने कहा, “यह बराज (मिट्टी का बाँध) अब केवल सिंचाई के लिए ही नहीं, परिमार्जित कृषि-योजनाओं और नवीनतम तकनीक-आधारित उद्योगों के लिए भी वरदान साबित होगा।” उनके ये शब्द आज अक्षरशः सही प्रतीत हो रहे हैं।

यदि देखा जाए तो दुनिया के लगभग सभी राष्ट्रों की अपनी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि और संस्कृति रही है। सभी ने समय-समय पर छोटे-बड़े उत्थान-पतन देखे हैं, साथ ही समृद्धि के आनंद के साथ-साथ जीवन को झकझोर देने वाली त्रासदी के अनुभव भी प्राप्त किए हैं। हिरोशिमा और नागासाकी का धुआँ अभी थमा भी नहीं है कि वैज्ञानिक प्रगति के चलते ही युद्ध का स्वरूप एकदम धिनौना और भयावह होता जा रहा है।

इसी संदर्भ को उठाते हुए उन्होंने कहा कि यह बात कहना या दोहराते रहना बड़ा सरल है कि दुनिया एक है या फिर दुनिया नाम की कोई चीज है ही नहीं।...वास्तव में हम ऐसा क्यों सोचते हैं कि हमारा अपना ही कोई व्यक्ति गलती करता है तो वह गलत नहीं है, किंतु जब दूसरे वर्ग का व्यक्ति ऐसा ही कृत्य करता है तो वह ‘अपराध’ हो जाता है। वे अपने उद्बोधन के जरिए पूछते हैं—“When I throw an atom bomb, it is no wrong; when another man throws an atom bomb, it is a grievous sin. Why is it that we have developed this type of compartmental ethics?...The chaos in the world is a reflection of the chaos in our minds.”

इस दृष्टि से यह तथ्य कैसे नकारा जा सकता है कि आज उग्रवाद और आतंकवाद के दौर में ‘बम’ जैसा शब्द अपराध जगत में और अलगाववादी समुदायों में सहज स्वीकार्य शब्द हो गया है। कुत्सित कृत्यों का कारक बनने वाली यह सोच राष्ट्रीय एवं

अंतरराष्ट्रीय जीवन में ऐसे रच-बस गई है जैसे कुछ लोगों के लिए तो यह जरूरी खुराक हो।

महाविद्यालय के स्वर्ण-जयंती समारोह का आरंभ डॉ. राधाकृष्णन के मुखारविंद से प्रस्फुटित विलक्षण वाणी से होना समस्त उपस्थित बुद्धिजीवियों के लिए सचमुच प्रेरणास्पद अनुभव रहा। वस्तुतः उनके अभिभाषण का केंद्रीय चिंतन संकीर्णता के मकड़जाल से ऊपर रहा। ऐसे में उन्होंने दकियानूसी जीवन-शैलियों और लीक पीटती शिक्षा पद्धतियों को नकारते हुए कटाक्ष किया—“I know all the vidyas but I do not know the soul of things. I do not know the soul within myself.”

वे सही अर्थों में आत्मा के पवित्रीकरण की पक्षधरता के साथ

उपसंहार की ओर बढ़े। अंत में उन्होंने रेखांकित किया कि किसी भी शिक्षा-परिसर में यह अनुभव किया जाना जरूरी है कि विभिन्न विषयों व विधाओं के अतिरिक्त भी व्यक्ति के व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास हो, उस ‘आत्मा’ का विकास हो जो अपने आप में मानवता को पुनर्जीवित करने की क्षमता संजोते हुए आगे बढ़े और प्रत्येक जड़-चेतन के प्रति अनुराग स्थापित करने की सतत प्रेरणा दे सके।





# सरकारी स्कूल में शिक्षक

शिक्षक किसी भी औपचारिक शिक्षा प्रक्रिया का केंद्र होते हैं। वैसे भी जब छात्र, सीमित संसाधनों वाले परिवार के बच्चे हों और स्कूल में बुनियादी सुविधाओं की कमी हो तो मुख्य भार अध्यापक पर ही आता है। पिछले दो दशक से शिक्षा व्यवस्था में बेहतरी के लिए कार्य करते हुए, देश और विदेश में शिक्षकों से संवाद और प्रशिक्षण का अवसर मिलता रहा है। उनके साथ संवाद से उनकी चुनौतियाँ और छिपी प्रतिभा का अंदाज लगता रहा है। इस लेख में, शिक्षकों के साथ के अपने कुछ अनुभव साझा करना चाहता हूँ।



## संजीव राय

**शिक्षा :** उच्च शिक्षा, इलाहाबाद विश्वविद्यालय और दिल्ली विश्वविद्यालय में।

**संप्रति :** लेखक, शिक्षाविद हैं और वर्तमान में टाटा इंस्टीट्यूट ऑफ सोशल साइंसेज, मुंबई के साथ एडजंक्ट प्रोफेसर के रूप में संबद्ध हैं। स्कूली शिक्षा के मुद्दे पर, भारत, कतर और अफगानिस्तान में कार्य का अनुभव।

**लेखन :** नेपाल के जनयुद्ध और सामाजिक-राजनीतिक परिवर्तन में शिक्षा की भूमिका पर चर्चित पुस्तक—'कनफ्लिक्ट, एजुकेशन एंड पीपुल'स वॉर इन नेपाल' के लेखक।

**संपर्क :** मोबाइल— 9818721112

ईमेल— sanj.2402@gmail.com

निश्चित रूप से सरकारी विद्यालयों में शिक्षा में गुणवत्ता के सुधार का प्रश्न एक गंभीर विमर्श की माँग करता है। लेकिन साथ ही यह समझना महत्वपूर्ण है कि कैसे जमीनी स्तर पर छोटे-छोटे अवरोध, शिक्षा में नवाचारी प्रक्रिया को रोक देते हैं। नब्बे के दशक से, दुनिया भर में 'सभी के लिए शिक्षा' का अभियान जोर पकड़ रहा था। भारत में इसी समय तेजी से शिक्षा का विस्तार शुरू हुआ। देश-दुनिया में सरकारों और गैर-सरकारी संस्थाओं के प्रयास से और बढ़ती सामाजिक चेतना से सरकारी स्कूलों की संख्या और इनमें गरीब बच्चों का नामांकन तेजी से बढ़ा। जब वंचित समुदाय के बच्चे, सरकारी स्कूलों में आने लगे तो धीरे-धीरे निजी स्कूलों का विस्तार होने लगा। गाँव-शहर सब जगह निजी स्कूल तो संपन्नता और सामाजिक प्रतिष्ठा के प्रतीक बनकर उभरने लगे और सरकारी प्राथमिक

विद्यालय में जाना सामाजिक और आर्थिक रूप से विपन्नता का द्योतक लगने लगा! आज सरकारी अधिकारी-कर्मचारी से लेकर प्रधान-मुखिया तक सभी के अपने बच्चे निजी स्कूलों में जा रहे हैं।

जैसे-जैसे निजी विद्यालयों का प्रभुत्व बढ़ने लगा वैसे-वैसे सरकारी विद्यालय गुणवत्ता के स्तर पर नीचे सरकने लगे। साथ ही, बढ़ती स्कूलों की माँग ने सरकारों पर दबाव तो बनाया, लेकिन इस बीच कई तरह के स्कूल अस्तित्व में आ गए। अब स्कूलों की परिभाषा भी बदल गई। पाँच कमरों और पाँच से छह शिक्षकों वाले प्राथमिक स्कूलों के स्थान पर, एक कमरे-एक शिक्षक वाले स्कूलों की स्वीकार्यता बनाई गई। फिर, प्रशिक्षित शिक्षकों के स्थान पर, सामुदायिक शिक्षक, गुरु जी, शिक्षामित्र, अनुबंधित शिक्षकों आदि की नई श्रृंखला तैयार हो गई। ऐसे शिक्षकों को 'वैतन' की जगह 'मानदेय' मिलने लगा,

क्योंकि इनकी योग्यता, नियमित शिक्षकों की तुलना में कम थी। इन नए शिक्षकों की योग्यता और मानदेय दोनों कम थे, लेकिन शिक्षा में गुणवत्ता बढ़ाने की अपेक्षा अधिक थी।

21वीं शताब्दी के शुरुआत में जब संयुक्त राष्ट्र की अगुवाई में मिलेनियम डेवलपमेंट गोल्स और भारत में सर्वशिक्षा अभियान शुरू हुआ तो शिक्षकों के प्रशिक्षण में भी तेजी आई। सरकारी प्रशिक्षण संस्थानों के अतिरिक्त, शिक्षा में कार्यरत लगभग सभी गैर-शिक्षण

“ उत्तर प्रदेश के एक जिले के शिक्षकों का प्रशिक्षण कार्यक्रम चल रहा था। दो-तीन कार्यशाला हो चुकी थीं। मैंने ध्यान दिया कि प्रत्येक प्रशिक्षण के धन्यवाद सत्र में कुछ गिने-चुने शिक्षक बेहतरीन ढंग से बोलते थे। उनकी भाषा में आदर भी भरपूर था। लेकिन हर कार्यशाला के अंत में वह कहते—‘ऐसी बढ़िया और उपयोगी कार्यशाला पहले कभी नहीं हुई’।

मुझे हैरानी हुई कि जब प्रशिक्षण इतना अच्छा हो रहा है तो स्कूल के स्तर पर कुछ बदल क्यों नहीं रहा है। ”

संस्थाएँ, अध्यापकों को ट्रेनिंग देने लगीं। गतिविधि आधारित कक्षा संचालन से लेकर स्कूल के बाहर के बच्चों के सर्वे कैसे करें, विषय-विशेष कैसे पढ़ाएँ, एक अध्यापक दो कक्षा का एक साथ संचालन कैसे करें, कक्षा कैसे सजाएँ, समुदाय की बैठक कैसे करें जैसे सैकड़ों विषय प्रशिक्षण का हिस्सा बने। प्रशिक्षण के लिए पुस्तिका और सहायक सामग्री बनीं, मास्टर ट्रेनर्स तैयार किए गए। लेकिन जमीनी स्तर पर अपेक्षा के अनुरूप बदलाव नहीं हो सके। जहाँ-जहाँ बदलाव हुए भी, वहाँ शिक्षकों की अपनी विशेष लगन और अतिरिक्त संसाधन के कारण हुए। देश में शिक्षा में विशेष कार्य के लिए चर्चा में आए कुछ ‘मॉडल’ अपने उत्कृष्ट कार्यों को लंबे समय तक आकर्षण का केंद्र नहीं बनाए रख सके।

सन् 2005 की बात है। उत्तर प्रदेश के एक जिले के शिक्षकों का प्रशिक्षण कार्यक्रम चल रहा था। दो-तीन कार्यशाला हो चुकी थीं। मैंने ध्यान दिया कि प्रत्येक प्रशिक्षण के धन्यवाद सत्र में कुछ गिने-चुने शिक्षक बेहतरीन ढंग से बोलते थे। उनकी भाषा में आदर भी भरपूर था। लेकिन हर कार्यशाला के अंत में वह कहते—‘ऐसी बढ़िया और उपयोगी कार्यशाला पहले कभी नहीं हुई’।

मुझे हैरानी हुई कि जब प्रशिक्षण इतना अच्छा हो रहा है तो स्कूल के स्तर पर कुछ बदल क्यों नहीं रहा है। फिर मैंने इस बारे में कुछ शिक्षकों से अलग से बात की। एक बहुत ही लगन से कार्य करने वाले शिक्षक ने व्यावहारिक और मजेदार बात कही। उनका कहना था कि ‘स्कूलों में तो हम लोग तरह-तरह के काम में व्यस्त रहते हैं, जब प्रशिक्षण में दो-तीन दिन के लिए आना होता है तो हम

लोगों को थोड़ा आराम मिल जाता है। आप लोग, अच्छी जगह प्रशिक्षण कराते हैं, रुकने-खाने का अच्छा प्रबंध रखते हैं, थोड़ा-बहुत कुछ सीखने को भी मिल जाता है, इसीलिए हम लोग बहुत अच्छे से धन्यवाद ज्ञापन करते हैं, शेष बातें हम प्रशिक्षण से बाहर निकलते हुए यहीं छोड़ जाते हैं।’

एक दूसरे युवा शिक्षक ने बताया, ‘अलग-अलग संस्था के लोग आते हैं, अलग-अलग उनकी प्राथमिकता होती है, कुछ दिन के बाद कुछ नए लोग आ जाते हैं, हमारे अधिकारियों की प्राथमिकता अलग होती है इसलिए हमें अपने हिसाब से अपना ही स्कूल चलाने को नहीं मिलता है। ऐसे में फिर हम भी अधिक मेहनत नहीं करते हैं, केवल हॉ-हॉ करते हैं।’

इस बातचीत से मुझे यह समझ बनी कि जब तक अध्यापकों से उनके अपने छात्रों के प्लान के बारे में और उनके अपने मोटिवेशन (अभिप्रेरणा) पर, उनके खुद के सपने और पढ़ाई-लिखाई, स्कूल की परिस्थिति के बारे में बात नहीं होगी, तब तक कार्यशाला का ज्ञान, कार्य रूप में परिणित नहीं होगा।

मैं फिर कुछ चयनित स्कूलों में गया। इत्मीनान से स्कूल और गाँव के बारे में विस्तार से बात की। शिक्षकों से विस्तार से उनकी अपनी पढ़ाई-लिखाई, घर-परिवार और उनके स्कूल में बदलाव की योजना के बारे में चर्चा हुई। कई शिक्षक जीवन में आगे बढ़ना चाहते थे। स्कूल को एक मॉडल के रूप में विकसित करना चाहते थे।

कई स्कूलों में मध्याह्न भोजन की लकड़ी कक्षा में रखी हुई थी और बच्चे बाहर बैठ रहे थे। एक स्कूल में टूटी कुर्सी-मेज से एक कक्षा भरी हुई थी। कई स्कूलों में ब्लैकबोर्ड और इमारत पर वर्षों से



रंग-रोगन नहीं हुआ था। चार्ट-पोस्टर जैसी, जो सीखने-सिखाने की सामग्री थी, वह हेडमास्टर के कक्ष में बक्से में बंद थी, क्योंकि कील लगाने के लिए हथौड़ी नहीं थी।

कुछ दिनों बाद हमने, इन्हीं शिक्षकों को फिर कार्यशाला के लिए बुलाया। पहले उनके खुद के बारे में, उनकी योजना के बारे में बात हुई। उनको वहीं कुछ किताबें पढ़ने का मौका दिया गया, क्योंकि अधिकांश ने पिछले पाँच सालों में कोई नई किताब नहीं पढ़ी थी। शिक्षकों की चुनौतियों को सुना गया। उनके कार्यों को सराहा गया।

और उनके बीच कुछ स्कूलों के बारे में (कक्षा में लकड़ी, घिसा ब्लैकबोर्ड आदि) चर्चा हुई। फिर स्कूल के स्तर पर साफ-सफाई, समुदाय के सहयोग से रंग-रोगन, कक्षा सजावट करने और हथौड़ी-कील जैसी वस्तुएँ खरीदने की योजना बनी। दो दिन का समय तय हुआ और अभियान के तौर पर सौ से अधिक स्कूल भवन की रंगाई से लेकर कबाड़ बाहर करने का कार्य अध्यापकों द्वारा, बच्चों और अभिभावकों के सहयोग से किया गया। सबको अपना स्कूल, अच्छा लगने लगा। एक-दूसरे स्कूल के बीच तुलना होने लगी और सभी अपना स्कूल बेहतर करना चाहते थे।

फिर दूसरे स्कूलों के शिक्षकों को भी इन स्कूलों को दिखलाया गया। अन्य स्कूलों के शिक्षक भी अपने स्कूल में कुछ नया करने को प्रेरित हुए।

बदलाव के क्रम में दूसरे चरण में 'पढ़ना-लिखना, सीखना-सिखाना' को केंद्र में रखकर कार्य हुआ। 25-30 शिक्षकों का एक समूह बनाया गया। इस समूह में अलग-अलग उम्र के शिक्षक रखे गए। इस समूह में महिला और पुरुष शिक्षक दोनों ही थे और यह सूची जिले के शिक्षकों ने ही तैयार की थी। शिक्षकों के विचारों, सुझाव और उनके अनुभव को पूरी प्रमुखता दी गई। शिक्षकों को देश में चल



रहे कुछ नवाचार से अवगत कराया गया। सीखने के सिद्धांतों पर बात हुई। शिक्षकों ने स्थानीय जरूरत के अनुसार, सीखने की पद्धति, सामग्री और प्रशिक्षण के लिए पुस्तिका तैयार की। शिक्षकों ने अपने साथियों को प्रशिक्षण दिया और इस दौरान अपने स्कूल में किए गए कार्य उनको दिखाए। 100 से अधिक स्कूलों में सीखने के नए तरीके और सामग्री पहुँची और छोटे समूह में शिक्षण कार्य शुरू हुए।

समुदाय और स्कूल के बीच भी सकारात्मक संबंध और विश्वास बना। स्कूल में रस्सी की मदद से किताबों को टाँगकर पुस्तकालय भी बनाया गया। जिले के अधिकारियों ने पूरा सहयोग दिया और उनकी भूमिका भी इस प्रक्रिया में सकारात्मक रही। शिक्षकों पर उनकी रचनात्मकता पर भरोसा करना, उनको स्वयं प्रयोग करने की आजादी दे रहा था।

दो-तीन वर्ष तक इस कोशिश के परिणाम उत्साहवर्धक रहे। फिर, धीरे-धीरे ट्रांसफर-पोस्टिंग के चलते टीम बिखरने लगी। फिर स्कूल स्तर पर कार्य को प्रोत्साहन की बजाय शिक्षकों को दूसरे सरकारी कार्यों में लगा दिया गया।

आज विडंबना यह है कि सरकार में छोटे से बड़े स्तर पर नौकरी करने वालों ने, खुद को और अपने बच्चों को सरकारी विद्यालयों से बाहर कर लिया। आज सरकारी विद्यालय एक तरह से कमजोर सामाजिक स्तर का सूचकांक बन गया है और बहुमत में वंचित बच्चे

“ सरकारी स्कूलों में समस्या के कई पहलू हैं। वित्त का कम आवंटन, शिक्षकों की कमी, पाठ्यपुस्तकों का समय से नहीं आना, स्कूल में संसाधनों की कमी, भ्रष्टाचार का तंत्र और शिकायतों की गैर-सुनवाई जैसे मुद्दे प्रमुख हैं। आज अभिभावकों के लिए निजी स्कूल में अंग्रेजी माध्यम एक प्रमुख आकर्षण है। लेकिन फिर भी अगर शिक्षकों को प्रोत्साहन मिलता रहे, उनको अलग-अलग विषय के विशेषज्ञ का सहयोग मिलता रहे तो वे बेहतर कार्य कर सकते हैं। ”

सरकारी प्राथमिक स्कूलों में जा रहे हैं। सरकारी स्कूलों में समस्या के कई पहलू हैं। वित्त का कम आवंटन, शिक्षकों की कमी, पाठ्यपुस्तकों का समय से नहीं आना, स्कूल में संसाधनों की कमी, भ्रष्टाचार का तंत्र और शिकायतों की गैर-सुनवाई जैसे मुद्दे प्रमुख हैं। आज अभिभावकों के लिए निजी स्कूल में अंग्रेजी माध्यम एक प्रमुख आकर्षण है। लेकिन फिर भी अगर शिक्षकों को प्रोत्साहन मिलता रहे, उनको अलग-अलग विषय के विशेषज्ञ का सहयोग मिलता रहे तो वे बेहतर कार्य कर सकते हैं। प्रयास यह होना चाहिए कि साल में एक बार स्कूल के सर्वश्रेष्ठ शिक्षक का चुनाव बच्चों द्वारा किया जाना चाहिए और समाज-सरकार द्वारा उन्हें सम्मानित करना चाहिए। प्रिय शिक्षक छात्रों के लिए एक रोल मॉडल होते हैं और छात्र उनसे प्रेरणा लेते हैं।

किसी ने ठीक ही कहा है कि—

एक औसत शिक्षक अपने छात्रों को बताते हैं,

अच्छे शिक्षक अपने छात्रों के लिए व्याख्या करते हैं,

श्रेष्ठ शिक्षक अपने छात्रों के लिए कार्य करके दिखाते हैं,

लेकिन सर्वश्रेष्ठ शिक्षक अपने छात्रों को बेहतर कार्य करने के लिए प्रेरित करते रहते हैं।





# बच्चे कैसे सीखते हैं

शिक्षण में सीखना जितना महत्वपूर्ण होता है सिखाना भी उतना ही महत्व का होता है। ये एक ही सिक्के के दो पहलुओं की तरह होते हैं। यही वजह है कि आज इन दोनों ही पहलुओं पर ध्यान दिया जा रहा है। सीखने और सिखाने के तौर-तरीकों में समय के साथ आमूलचूल परिवर्तन आया है वैचारिक और क्रियान्वयन दोनों ही स्तरों पर। नई सोच को लेकर शिक्षा पर काम किया जा रहा है। इसका प्रत्यक्ष उदाहरण है दिल्ली सरकार द्वारा शालेय विद्यार्थियों के लिए 'हैप्पीनेस करिकुलम' की शुरुआत दलाई लामा के हाथों।

तात्पर्य यह कि आज के समय में शिक्षा महज शाला जाकर विभिन्न विषयों को समझना ही नहीं रह गई है, बल्कि इससे ऊपर उठकर भी इसे लिया जा रहा है। और ऐसा करना स्वाभाविक भी है क्योंकि शिक्षा से जुड़े लोगों को अच्छी तरह से मालूम है कि केवल विभिन्न विषयों की पुस्तकीय



जानकारी प्रदान करना ही शिक्षा का उद्देश्य नहीं होता है। शिक्षा का उद्देश्य विद्यार्थियों का सर्वांगीण विकास करना होता है। इस सर्वांगीण विकास में सभी तरह का विकास शामिल है।

समय के साथ शिक्षा में सर्वांगीण विकास के समस्त पहलुओं को शामिल करने का प्रयास किया जा रहा है। इन सब में समस्या यह आ रही है कि शिक्षा, शिक्षक और विद्यार्थी तीनों को ही प्रयोगशाला बना लिया गया है। कई बार ऐसे आदेश भी होते हैं जो अव्यावहारिक होते हैं। किंतु जिन बिंदुओं पर ध्यान दिया जाना चाहिए वे अभी तक अछूते ही रहे हैं।

आज शिक्षा से संबंधित समस्त पहलुओं पर विचार करने के बावजूद शैक्षिक पर्यावरण निर्मित करने बाबत कम ही विचार-विमर्श होता है। सीखने-सिखाने

और पढ़ने-पढ़ाने का जब वातावरण होगा तभी शैक्षिक उद्देश्यों को प्राप्त किया जा सकता है।

शाला किस स्थान पर स्थित है? शाला में आवश्यक मूलभूत सुविधाओं की क्या स्थिति है? शाला में विद्यार्थियों के बैठने की किस तरह की व्यवस्था है? क्या शालाएँ मौसम अनुकूल हैं?

अगर हम अपने देश की बात करें तो प्राचीन समय में गुरुकुल हुआ करते थे। ये गुरुकुल नगर से दूर जंगलों में ऋषियों के आश्रम में हुआ करते थे। शांत वातावरण में प्रकृति के सान्निध्य में शिष्य गुरुओं से जो ऋषि ही होते थे, शिक्षा ग्रहण करते थे। प्राकृतिक वातावरण हरे-भरे पेड़-पौधे शांत वातावरण मन-मस्तिष्क पर सकारात्मक प्रभाव डालते हैं और बच्चे के सीखने की गति पर असर डालते हैं जिनसे शैक्षिक उद्देश्यों की प्राप्ति में आसानी होती है।



**सविता प्रथमेश**

शिक्षा : एम.एससी., एम.ए., एम.एड. ।

संप्रति : शिक्षक ।

प्रकाशन : पराग, सारिका, धर्मयुग, वागर्थ, नवनीत, कार्दबिनी, समकालीन भारतीय साहित्य, अक्षरपर्व इत्यादि ।

संपर्क : 11 आर.के. रेसीडेंसी, घुरुरोड, तिफरा, विलासपुर, छत्तीसगढ़-495001

किंतु समय के साथ जैसे-जैसे शिक्षा का स्वरूप बदला, शिक्षा के परंपरागत साधनों का स्थान औपचारिक शिक्षा संस्थानों ने लेना शुरू किया, शिक्षा के उद्देश्यों में आमूलचूल परिवर्तन आया। अब शिक्षा आत्मविकास के स्थान पर आजीविका का पर्याय मानी जाने लगी। शिक्षा के बदले हुए अर्थ और उद्देश्यों ने शिक्षा के साधनों पर गहरा असर डाला। अति सीमित संसाधनों में घर-परिवार से दूर शांत वातावरण में प्रकृति की गोद में गुरुकुल में दी जाने वाली शिक्षा

“**टैगोर ने अपने शिक्षा दर्शन में स्पष्ट रूप से लिखा है कि हमारी शिक्षा व्यवस्था ने बच्चों को प्रकृति और सामाजिकता से दूर कर दिया है और अगर हमें शिक्षा को बच्चों के लिए अर्थपूर्ण बनाना है तो बच्चों को प्रकृति के नजदीक लाना होगा। सौ बरस पूर्व टैगोर ने जिन सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक पृष्ठभूमि में शिक्षा को प्रकृति से जोड़ने की बात कही थी, उन तमाम परिस्थितियों में आमूलचूल परिवर्तन आ चुका है।**”

नगरों, कस्बों और शहर में लोगों के बीच दी जाने लगी। मिट्टी, घास-फूस के गुरुकुलों का स्थान ईंट, सीमेंट और अन्य सुख-सुविधाओं ने ले लिया। सर्वशिक्षा अभियान के तहत घर से एक कि.मी. की दूरी पर विद्यालय है।

जनसंख्या वृद्धि के साथ-साथ नगर, कस्बों और शहरों का स्वरूप भी बदल चुका है और सरकारी नीति भी विशेषकर छोटे बच्चों को घर के पास के ही स्कूल में शिक्षा की सुविधा देने की है तो स्वाभाविक रूप से प्राचीन गुरुकुल पद्धति जैसे सुरम्य, शांत और प्राकृतिक वातावरण का अभाव भी रहेगा।

बच्चे के सीखने पर मनोवैज्ञानिकों ने अध्ययन किए हैं और बताया है कि कोई एक कारण नहीं है जिसकी वजह से बच्चे सीखने को प्रेरित होते हैं, किंतु शाला का पर्यावरण महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है। शालेय पर्यावरण में कक्षा-कक्ष में कुल दर्ज विद्यार्थियों की संख्या, शिक्षकों का व्यवहार, साथियों का व्यवहार, कक्षा-कक्ष और शाला की भौतिक स्थिति, बालक और बालिका प्रसाधन की समुचित और सम्मानजनक व्यवस्था, विद्यार्थियों के बैठने हेतु उचित व्यवस्था, विद्यार्थियों को सीखने हेतु प्रेरित करने के लिए वाचनालय, खेल-कूद, सांस्कृतिक कार्यक्रमों और अन्य पाठ्य सहगामी क्रियाकलापों का होना अथवा नहीं होना आते हैं। हालाँकि इसके अलावा भी बहुत से और घटक इसमें सम्मिलित हैं। इनमें प्रमुख है शाला किस स्थान पर स्थित है?

वर्तमान शालाओं पर कटाक्ष करते हुए टैगोर ने कहा था कि, 'तत्कालीन स्कूल शिक्षा के कारखाने, बनावटी दुनिया के संदर्भ से कटे हुए और सफेद दीवारों से झाँकते मृतक के आँखों की पुतली की तरह

हैं।' यह स्मरण रखना समीचीन होगा कि टैगोर ने 'तत्कालीन स्कूलों' की स्थिति कहा था जो सौ से अधिक बरस पहले की बात है। किंतु क्या यह आश्चर्यजनक नहीं है कि हमारी शालाएँ वैसी की वैसी ही हैं। टैगोर ने अपने शिक्षा दर्शन में स्पष्ट रूप से लिखा है कि हमारी शिक्षा व्यवस्था ने बच्चों को प्रकृति और सामाजिकता से दूर कर दिया है और अगर हमें शिक्षा को बच्चों के लिए अर्थपूर्ण बनाना है तो बच्चों को प्रकृति के नजदीक लाना होगा। सौ बरस पूर्व टैगोर ने जिन सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक पृष्ठभूमि में शिक्षा को प्रकृति से जोड़ने की बात कही थी, उन तमाम परिस्थितियों में आमूलचूल परिवर्तन आ चुका है।

कहना न होगा कि बदलते सामाजिक परिवेश में शिक्षा के बदलते अर्थ ने एक ओर जहाँ इसे मात्र जीविकोपार्जन से ही जोड़कर रख दिया है वहीं माता-पिता और अभिभावकों सहित समाज यहाँ तक कि शिक्षकों का नजरिया भी इस तरह का हो गया है कि सर्वांगीण विकास के लिए मानी जाने वाली शिक्षा केवल रटत विद्या तक ही सीमित कर दी गई है और इसे ही सर्वोपरि व एकमेव मान और समझ लिया गया है। यहाँ तक कि अघोषित रूप से इसे मान्यता भी मिल चुकी है।

तनाव भरी इस शिक्षा में घी का काम करती हैं हमारी शालाओं की भौगोलिक स्थिति, उनकी भौतिक संरचना और शाला द्वारा छात्रों को दी गई मूलभूत सुविधाओं की स्थिति। आज के समय में जिस तरह से हमारी जीवन-शैली में आमूलचूल परिवर्तन आया है, हमारा रहन-सहन भी तथाकथित आधुनिक होता जा रहा है जो स्पष्ट रूप से हमारे घरों, हमारे पहनावे और खान-पान में दृष्टिगोचर होता है। पुराने समय में जब हमारे पास जंगल भरपूर थे, हमारे घर मिट्टी से बने होते थे, तो शालाएँ गुरुकुल में लगती थीं। किंतु औद्योगीकरण ढेरों बदलाव अपने साथ लाया है। इन बदलावों ने हमारे घरों की बनावट पर गहरा असर डाला है। सुंदरता और मजबूती का हवाला देते हुए सीमेंट ने मिट्टी की जगह ले ली। दूसरी तरफ बढ़ती आबादी की आवश्यकता पूर्ति हेतु जंगलों की अंधाधुंध कटाई ने तापमान में बढ़ोतरी की। उधर सीमेंट के मकान भी गर्म रहने लगे। घरों की तर्ज पर ही शालाएँ भी बनाई जाने लगीं। बच्चों को अधिक दूरी तय न करनी पड़े यह सोचकर शालाएँ ऐसे स्थानों पर भी बना दी गईं जो शिक्षण हेतु जरा भी उपयुक्त नहीं हैं। भरे बाजार में, घरों के मध्य, दुकानों के बीच शालाएँ चल रही हैं। जहाँ समय-कुसमय तीव्र ध्वनि प्रदूषण, फिल्मी गीत और अन्य धार्मिक, सामाजिक और राजनीतिक आयोजन होते रहते हैं जिनके शोर के कारण शालाओं में पढ़ाई के अनुकूल वातावरण निर्मित नहीं हो पाता। आज के मापदंडों के अनुरूप शालाएँ ऐसी भवन सामग्रियों से निर्मित होती हैं जो शाला भवन को गर्म रखती हैं। यँ भी हमारा देश गर्म है ही। ऊपर से शाला के आस-पास के वातावरण और शाला की अपनी भौतिक संरचना के कारण गर्मी बढ़ जाती है। सभी शालाएँ

वातानुकूलित यंत्र लगवाने में सक्षम नहीं हैं और पर्यावरण की दृष्टि से भी यह उपयुक्त नहीं है कि कृत्रिम रूप से प्राकृतिक वातावरण तैयार किया जाए, जबकि कम खर्च में प्राकृतिक तरीका अपनाकर इसे आसानी से प्राप्त किया जा सकता है।

शिक्षा व्यवस्था की जब-जब बातें की जाती हैं, बात पाठ्यक्रम, शिक्षण पद्धति, शाला के घंटों, शिक्षक-छात्र संबंध, शिक्षा मनोविज्ञान तक ही आकर सीमित हो जाती है। हमारी शालाएँ गाँव, नगर और शहर के किन स्थानों पर स्थित हैं, यह बातचीत का विषय ही नहीं होता। शालाओं के पास पान, सिगरेट जैसी दुकानें भला बालक पर किस तरह का असर डालेंगी?

इस वर्ष हमने एक प्रयोग किया। घर पर हमने वाचनालय तो आरंभ किया ही है। हमने इस बार विद्यार्थियों और प्रतियोगी परीक्षाओं की तैयारी करने वाले प्रतिभागियों से कहा कि अगर किसी के घर पर अध्ययन हेतु अनुकूल परिस्थितियाँ न हों तो वे हमारे घर पर आकर अध्ययन कर सकता है। हमारा घर चारों तरफ से पेड़-पौधों से घिरा हुआ है। साथ ही पूरी तरह से मिट्टी का बना हुआ है। गर्मियाँ शुरू होते ही कॉलोनी के बच्चे सुबह नौ-दस बजे से कॉपी-पुस्तकें लेकर आ जाते। हर उम्र के, अलग-अलग कक्षाओं के, जब तक माएँ नहीं आ जातीं दोपहर के भोजन के लिए। बमुश्किल आधा घंटा के लिए बच्चे घर जाते, दोपहर तीन-चार बजे फिर से आ जाते। पूरी गर्मी भर बच्चों ने गृहकार्य हमारे घर ही बैठकर पूरा किया। उल्लेखनीय बात यह रही कि बड़े बच्चों ने छोटे बच्चों को गृहकार्य में मदद की। प्रोजेक्ट्स बनवाने में मदद ही नहीं की, बल्कि उन्हें सुझाव भी दिए। बच्चे कहते, “आपके यहाँ से जाने का मन ही नहीं करता।” मैं पूछती, “क्यों?”

“आपके यहाँ इतनी हरियाली और ठंडक है कि गर्मी का पता ही नहीं चलता।” बच्चे कहते। बच्चों ने रोजाना स्कूल से अधिक घंटे हमारे घर पर बिताए। बिना नागा, बिना रोकटोक के। स्वस्फूर्त बच्चे आते। अपना काम करते। न उनके घर वाले उन्हें पढ़ाई के लिए पीछे पड़ने, न ही मेरी किसी प्रकार की टोकाटोकी। बच्चे बतियाते हुए गृहकार्य करते। कभी-कभार मतभेद होने पर लड़ते भी। कभी एक-दूसरे की शिकायत भी। लेकिन सब कुछ बिलकुल ही स्वाभाविक तरीके से। पढ़ने से बच्चे जब ऊब जाते तब खेलने लग जाते। कभी आउटडोर तो कभी लूडो, व्यापार जिसे वे स्वयं लेकर आते।



पुती दीवारें, एक ही तरह के कुर्सी-मेजें, यहाँ तक कि बैठक व्यवस्था भी एक ही ढर्रे की। एक वर्ष पूर्व मैंने एक प्रयोग किया था। छठी कक्षा में परंपरागत बैठक व्यवस्था को अर्ध चंद्राकार रूप में कर दिया। इससे सभी बच्चे शिक्षक की निगाह में आ गए। श्याम पट देखने में भी बच्चों को परेशानी नहीं होती। बच्चों का हमने टेस्ट लिया। आश्चर्यजनक रूप से उनके

एक शिक्षक के रूप में मैंने अनुभव किया कि चूँकि इन बच्चों को बिना बंदिश के प्राकृतिक वातावरण में हमने अपनी मर्जी से छोड़ दिया था तो बच्चे सहज रूप से सीखने के लिए प्रेरित हुए। एक बात मैंने और भी महसूस की कि शांत, हरियाली से भरपूर पर्यावरण सीखने की गति को बढ़ा देता है। एक और बात मैंने नोट की कि बच्चों को भी पढ़ाई की चिंता होती है, पर वे अपने तरीके से करना चाहते हैं। हम बड़े उन्हें अपने तरीके से पढ़ाना चाहते हैं। हम चाहते हैं हम जब कहीं तब पढ़ने बैठें और जब हम कहीं खेलना है तो वे खेलने जाएँ। जबकि हमें यह सामान्य-सी और छोटी-सी बात समझने की जरूरत है कि किसी भी काम का परिणाम तभी सौ फीसद मिलेगा जब वह मन से किया जाए। बच्चे अपने मन से काम करना चाहते हैं। मन से का अर्थ है कि जब वे चाहें।

आज के स्कूल पर जब हम नजर डालते हैं तो वे सहज नजर नहीं आते। भारी-भरकम दरवाजा जिस पर निश्चित समय के बाद ताला लग जाता है, एक निश्चित पैटर्न के कमरे, सफेद रंगों में

सीखने की गति में परिवर्तन आया।

आज सभी शिक्षा का महत्व समझ चुके हैं। अशिक्षित और आर्थिक दृष्टि से कमजोर माता-पिता भी बच्चों की शिक्षा के लिए चिंतित हैं और यत्न भी कर रहे हैं। ऐसे में शिक्षा से जुड़े लोग और जिम्मेदार संस्थाएँ केवल शिक्षा पद्धति, पाठ्यक्रम, शाला के समय पर ही विचार न कर इस बात पर भी विचार करें कि शालाएँ शहर, नगर और गाँव में किन स्थानों पर स्थित हैं? क्या शाला के आस-पास का पर्यावरण एक अनुकूल शैक्षिक वातावरण तैयार कर रहा है? क्या शाला परिसर हरियाली से आच्छादित है जो सीखने की गति बढ़ा देती है? इन बातों पर भी आज के समय में ध्यान देने की आवश्यकता है। तब शायद हमारे बच्चों में स्कूल के नाम से भय न हो, शालाएँ उन्हें कैदखाने की तरह न लगें और वे स्कूल आने की जिद करें, न कि न जाने की और शाला की अंतिम घंटी उनमें उल्लास और खुशी उत्पन्न न करे।





## मेरी प्रारंभिक पाठशाला

चूल्हा चढ़ी कढ़ाई में पकती सब्जी या बटलोई में खदकती दाल। पास ही पीढ़े पर बैठकर आटा गूँधती माँ। उसी रसोईघर में घुसी, धुएँ और तेल-मसालों की गंध से सर्वथा बेपरवाह बालपोथी पढ़ती, गिनती सुनाती या तन्मयता से इमला लिखती मैं। आज याद करने पर अपने आरंभिक पठन-पाठन का यही बिंब उभरता है मन में। यह लगभग 65 बरस पहले की बात है।

यों बाकायदा पट्टी-पूजन भी हुआ था। पंडित रामनारायण ओझा की गड़रिया मोहाल, कानपुर स्थित पाठशाला में दाखिला दिलाने के लिए दादा जी मुझे ले गए थे। पट्टी-बस्ता-बोरका से लदी-फँदी विद्यालय पहुँची थी। पर पाठशाला का माहौल मुझे रास नहीं आया। निश्चय ही काफी नीरस थी वह पढ़ाई। और कुछ-कुछ कठोर भी।



**डॉ. उषा यादव**

**जन्म :** कानपुर (उत्तर प्रदेश)।

**शिक्षा :** एम.ए. (इतिहास एवं हिंदी); पी-एच.डी., डी.लिट.।

**प्रकाशन :** कविता, कहानी, उपन्यास, नाटक, समीक्षा आदि विधाओं में हिंदी में बच्चों एवं बड़ों के लिए लगभग सौ पुस्तकों का सृजन, रा.पु.न्यास से 'उषा यादव : संकलित कहानियाँ', सोना की आँखें (बाल उपन्यास), काले मेघा पानी दे, खेल-खिलौनों का संसार (बाल काव्य) प्रकाशित।

**सम्मान :** उ.प्र. हिंदी संस्थान, लखनऊ का 'बाल साहित्य भारती', म.प्र. साहित्य अकादमी, भोपाल से उपन्यास 'काहे री नलिनी' पर अखिल भारतीय वीर सिंह देव सम्मान, भारतेंदु हरिश्चंद्र पुरस्कार।

**संपर्क :** मोबाइल— 9012818025



गिनती, पहाड़े या कंठस्थ की हुई कविता सुनाने के बीच होने वाली विद्यार्थी की चूक पंडित जी बरदाश्त न करते। हथेली आगे बढ़ाने का आदेश देकर सटाक से एक संटी जड़ देते। यों पहले ही आगाह कर देते थे, 'जिसे कविता याद न हो, फौरन मुर्गा बन जाए।' घर में पूरे लाड़-प्यार के बीच पत्नी में ऐसे दृश्य देखकर घबरा उठती थी। वैसे भी चार-पाँच घंटे बँधकर बैठना मुझ जैसी खिलाड़ी लड़की के लिए असंभव था। मैं स्कूल जाने से प्रायः कतराती। माँ भी भेजने की ज्यादा जिद न करतीं।

कायदे से मुझे पढ़ाई में पिछड़ जाना चाहिए था। पर स्थिति इसके विपरीत रही। पंडित जी ने सीधे दूसरी कक्षा में दाखिला दिया था। अगले साल छह-छह महीने में तरक्की देकर दो श्रेणियाँ उत्तीर्ण करा दीं। तीसरे साल पढ़कर तो मैं पाँचवीं पास भी हो गई।

कभी सोचती हूँ ऐसा कैसे संभव हुआ, तो ज़ेहन में माँ का चेहरा कौंध जाता है। उन्हीं की वजह से घर मेरी प्रारंभिक पाठशाला बना। वर्णमाला-मात्राओं को पहचानना-पढ़ना ही नहीं, बाकायदा लिखना भी माँ ने मेरे स्कूल जाने से पहले सिखा दिया

था। बगैर धीरज खोए। बगैर हड़बड़ाए। एक-एक अक्षर को स्वयं हाथ पकड़कर लिखना सिखाया था और फिर काली-चमचमाती पाटी पर मेरे मोती जैसे सफेद-सुडौल अक्षरों को देखकर गहरी रीझ से भर उठी थीं।

यह तो कुछ नहीं।

साक्षरता से इतर, जीवन-निर्माण की प्रक्रिया के तहत माँ ने जो सिखाया, खास चीज वही रही। लुहार की छेनी-हथौड़ी की ठक्-ठक् नहीं, किसी जड़िया जैसी कलात्मक खूबी से मूल्य-रत्नों को अपनी बेटी की अंतरात्मा में जड़ने की दक्षता उन्होंने दिखाई। और यह प्रक्रिया पढ़ने-पढ़ाने के क्षणों में नहीं, सामान्य रूप से हमारे उठते-बैठते वक्त चली थी।

मुझे याद है, एक दिन पड़ोस के जगदंबा चाचा की माँ के लिए मेरे मुँह से अनुचित शब्द सुनते ही माँ एकदम खामोश हो गई थीं। उनकी चुप्पी से मैं अचकचाई, तो हिम-शीतल कंठ से बोली थीं, "एक दिन सबको बूढ़ा होना है। उस उम्र में किसी के मुँह से मेरे लिए यह शब्द सुनकर तुम्हें कैसा लगेगा?...अपनी दादी-नानी की उम्र की महिला के लिए क्या तुम्हें ऐसे बोलना चाहिए?"

और मैं ग्लानि से धरती में गड़ गई थी। मुँह से निकालने से पहले शब्दों को तौलना माँ से शैशव में ही सीख लिया था।

देखती हूँ, आज किशोर पीढ़ी का एक बड़ा हिस्सा धड़ल्ले से माता-पिता के लिए इस किस्म के अशोभन शब्दों का इस्तेमाल करता है। गंभीरता से सोचती हूँ कि उन्हें संस्कारित करने में कहीं हम लोग ही तो पिछड़ नहीं गए। बच्चों के मुँह से निकले एक-एक शब्द पर क्या आज के जनक-जननी इतनी पैनी निगाह रख पाते हैं?

एक दिन पता नहीं किस संदर्भ में मैंने झूठ बोला और माँ उसे ताड़ गई थीं। उनके चेहरे पर मलिनता छा गई थी। गंभीर कंठ से बोलीं, “आज मैं खाना नहीं खाऊँगी। तुमने गलती की है, इसका प्रायश्चित्त मुझे करना पड़ेगा। तुम्हें सच बोलने की शिक्षा मैं क्यों नहीं दे सकी?”

और आँसुओं से रूंधे कंठ से मैंने फौरन गलती मान ली थी, “मुझे माफ़ कर दो, माँ। अब मैं हमेशा सच बोलूँगी।”

दरवाजे पर खड़े किसी अपाहिज-लाचार के लिए सदय होने का प्रसंग हो, घर के किसी तेज मिजाज सदस्य के व्यवहार पर सहिष्णुता-

क्षमाशीलता दिखाने की बारी हो अथवा आगत अतिथियों के सत्कार से लेकर आंगन की चिड़ियों तक के आहार के लिए कनकी बिखेरने की चौकसी हो, किसी पुस्तकीय ज्ञान से अधिक घर मेरी पाठशाला बना। आधी रात को भी घर आए भूखे मेहमान के लिए चूल्हा सुलगाते हुए मैंने कभी माँ के माथे पर शिकन तक पड़ती नहीं देखी। अतिथि-सत्कार की कौन-सी पुस्तकीय इबारत मुझे इतनी बारीकी से यह पाठ पढ़ा सकती थी?

प्रसंग और भी हैं।

उधेड़ी ऊन का गोला और दो असमान सलाइयाँ लेकर माँ से बुनाई सीखने की अपनी कौतुक भरी चेष्टा क्या कभी भूल सकेंगी? सूई में धागा डालकर फटे वस्त्र में कच्चा टाँका, तुरपन, बखिया से लेकर पैबंद तक का कौशल सीखना क्या कभी बिसरा सकूँगी? होली-दीवाली पर उनकी ममता की छाँह में निश्चित बैठकर अपने नन्हे हाथों से गुझिया भरने की कला में दक्षता पाना क्या कभी विस्मृत कर सकूँगी? ‘पितु-मातु सहायक स्वामी सखा तुम ही इक नाथ हमारे हो’ को मीठी आवाज में गुनगुनाती हुई माँ और उनके मधुर कंठ स्वर में अपना तोतला स्वर मिलाकर साथ देने की कोशिश करती हुई मैं, इन संस्कारों को आज की मशीनी जिंदगी के बावजूद हृदय-तल से क्या कभी मिटा सकूँगी?

आज उम्र के इस पड़ाव पर खड़ी होकर पीछे देखती हूँ तो महसूस करती हूँ कि माँ ने मुझे सिर्फ पाल-पोस कर बड़ा ही नहीं

किया, मेहनत से गढ़ा भी। अच्छी तरह याद है, मैंने अपनी छठी-सातवीं कक्षा तक की पढ़ाई माँ पर अवलंबित रहकर ही की थी। वह सब्जी काटतीं और मुझे अशोक के लोककल्याणकारी कार्य समझाती जातीं। वह सब्जी छोंकतीं और मुझे अकबर के दीन इलाही धर्म के मर्म से अवगत करातीं। वह रोटियाँ सेंकतीं और मुझे सूर के पदों का अर्थ बताती रहतीं। घर में सबको आश्चर्य होता था, किताब को कभी हाथ तक न लगाने वाली यह खिलाड़ी लड़की परीक्षा में इतने अच्छे अंकों से पास कैसे हो जाती है? इस रहस्य की कुंजी माँ का रसोईघर है, कोई सोच भी कैसे सकता था?

सच कहूँ, तो संयुक्त परिवार में अपना बचपन गुजारना ही मेरे लिए शिक्षा की अनवरत चलने वाली प्रक्रिया बना। आज के एकाकी परिवारों में पलने वाला बचपन इंटरनेट से ज्ञान साझा करने के बावजूद दादी-नानी की कहानी की जिस कीमती सौगात से वंचित है, उसकी भरपाई आसान नहीं है।

“दादा जी, कहानी!” कितनी ललक छिपी रहती थी हम बच्चों

की इस फरमाइश में। जी चाहता था कि मीठी और रसीली कहानियाँ लगातार सुनते रहें। दिन-दोपहर में दादा जी टाल देते, “अभी नहीं, रात को सुनना। दिन में कहानी सुनने से मामा रास्ता भूल जाएँगे।”

और हम भाई-बहन मामा को रास्ता भटकने से बचाने के लिए मन मारकर चुप रह जाते थे।

अंततः दिन ढलता था, रात आती थी। भोजन के बाद खुले चबूतरे पर बिछे दादा जी के तख्त पर हमारी धमा-चौकड़ी फिर शुरू हो जाती, “दादा जी, कहानी!”

आज महसूस होता है कि सच में परिवार ने मेरी प्रारंभिक पाठशाला बनने में

महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। पिता जी ने अपने ढंग से मुझे बहुत कुछ सिखाया। हाईस्कूल की परीक्षा से पहले की एक घटना याद आ रही है। पिता जी ने एक शाम मुझे अपने पास बुलाकर पूछा, “तुम्हारे पास हिंदी व्याकरण की कोई किताब है?”

“जी। ‘हिंदी रत्नाकर’ है और...”

“वह किताब ले आओ।” पिता जी ने वाक्य पूरा करने से पहले ही मुझसे पुस्तक माँग ली।

सात-आठ दिन बाद मैंने माँ के माध्यम से पिता जी तक अपना संदेश भिजवाया कि यदि उनका काम हो गया हो, तो पुस्तक मुझे लौटा दें। हफ्ता-दस दिन और निकलने के बावजूद किताब मुझे नहीं मिली। अंततः एक दिन मैं माँ के पास जाकर खीझ उठी, “अगले हफ्ते मेरा इम्तहान है और ‘हिंदी रत्नाकर’ अभी तक...।”



मेरी जानकारी में पिता जी नीचे गए हुए थे। लेकिन पता नहीं कब वह आकर अपने कमरे में पहुँच चुके थे। अभी मेरा वाक्य अधूरा ही था कि वह बाहर निकलकर गंभीर कंठस्वर में बोले, “क्या उसी किताब को पढ़कर तुम इम्तहान दोगी? परीक्षा की तैयारी के लिए और किताबें तुम्हारे पास नहीं हैं?”

मैं अवाक्! सिर झुकाए खड़ी रही।

“ **भूमंडलीकरण के वर्तमान युग में क्या परिवार बच्चे की प्रारंभिक पाठशाला रह गए हैं? कदाचित् ‘नहीं।’ संयुक्त परिवार का चलन ‘न’ के बराबर रह गया है। एकाकी परिवार में पैसे के पीछे भागते दंपती अपने आत्मज को भरपूर सुख-सुविधाएँ तो दे देते हैं, पर समय नहीं। फिर घर में पलने वाले दो, या कभी-कभी एक ही बच्चे के जीवन को गढ़ने की प्रक्रिया में मददगार कौन होगा?** ”

तब पिताजी ने बताया कि कचहरी में उनके बस्ते पर बैठने वाला मुंशी, छोटी उम्र का बहुत गरीब लड़का है। प्रथम श्रेणी में हाईस्कूल पास है और इस साल इंटर की प्राइवेट परीक्षा दे रहा है। व्याकरण की तैयारी के लिए ‘हिंदी रत्नाकर’ उसे दे दी गई है और अब उसके इम्तहान के बाद ही वह पुस्तक मुझे मिल सकेगी।

पूरा वाक्या सुनकर मैं सन्न रह गई थी।

उस दिन अपने पिता से मानवीय संवेदना का जो पाठ पढ़ा, उसे मेरे आचरण का अभिन्न हिस्सा बनना ही था। इसी संदर्भ से जुड़कर आज के परिप्रेक्ष्य में बड़ी गंभीरता से सोचती हूँ, भूमंडलीकरण के वर्तमान युग में क्या परिवार बच्चे की प्रारंभिक पाठशाला रह गए हैं? कदाचित् ‘नहीं।’ संयुक्त परिवार का चलन ‘न’ के बराबर रह गया है। एकाकी परिवार में पैसे के पीछे भागते दंपती अपने आत्मज को भरपूर सुख-सुविधाएँ तो दे देते हैं, पर समय नहीं। फिर घर में पलने वाले दो, या कभी-कभी एक ही बच्चे के जीवन को गढ़ने की प्रक्रिया में मददगार कौन होगा? ऐसे में नवीनतम शिक्षा-प्रणालियों के साथ अपनी स्वस्थ-जीवंत परंपरा का दूध-पानी जैसा मेल ही सघन तिमिर को विच्छिन्न करने वाली प्रकाश-किरण है। कभी नवजात शिशु को सुलाते समय दादी-बुआ-माँ स्नेहिल कहानियों के साथ मधुर लोरियों का मोहक स्वाद चखाती थीं। लोरियों के माध्यम से शिशु के साथ आत्मीय और रागात्मक संबंध जोड़ती थीं, जीवन-मूल्यों की बात कहती थीं। शिशु की निंदियाई आँखों में जाने-अनजाने न जाने कितने सात्विक संस्कार सपनों के साथ रिल-मिल जाते थे। आज कहाँ गुम हो गई हैं लोरियाँ, कोई नहीं जानता। किसके पास समय है लोरी गाकर शिशु को सुलाने के लिए? देखा तो यहाँ तक जा रहा है कि साल-डेढ़ साल के शिशु के नटखटी उत्पात से कुछ देर पीछा छुड़ाने के लिए अति व्यस्त माताएँ उसे चलते टेलीविजन के सामने बैठा देती हैं। नन्हा बालक टुकर-टुकर जो कुछ देखता रहता है, वह भले ही उसके सिर के

ऊपर से निकल जाए, पर हिंसा, मार-काट, अश्लीलता के वे घूँट कहीं-न-कहीं उसके भीतर उतर अवश्य जाते हैं। नतीजा जिस भयावह रूप में सबके सामने आया है, कहने की जरूरत नहीं। तो क्या किसी भी किस्म की शिक्षण-विधि से जोड़ने से पहले बच्चे को परिवार की पाठशाला में दीक्षित करना आवश्यक नहीं है? जिस तरह परिवार मेरी प्रारंभिक पाठशाला थी, आपकी प्रारंभिक पाठशाला थी, उसी तरह नई पौध की आरंभिक पाठशाला क्यों न बने? यदि हम समय रहते सावधान न हुए, तो अपनी पाँच हजार साल पुरानी भारतीय संस्कृति पर मंडराते खतरे की अनदेखी करने की सजा भोगने से बच न सकेंगे।

आसार दिखाई देने लगे हैं। निम्न वर्ग का बच्चा पेट के लिए दो रोटी के जुगाड़ में कभी ढाबे पर बरतन माँजता है, कभी कचरे के ढेर से कागज की चिंदिया और टूटी-फूटी प्लास्टिक बटोरता है। सरकार द्वारा निशुल्क शिक्षा और अन्य सुविधाएँ उसके लिए इसलिए बेमानी हो जाती हैं क्योंकि उसके पास ‘परिवार’ के नाम पर फुटपाथ के सिवाय है क्या? मध्यम वर्ग का बच्चा माता-पिता की अधूरी महत्वाकांक्षाओं की पूर्ति के लिए साधन रूप में इस्तेमाल होते वक्त सिर्फ एक ‘यंत्र’ बनकर रह जाता है। ऐसे में उसे परिवार से मिलने वाली नैतिक शिक्षा कौन दे? रहा संपन्न वर्ग का बालक, उसकी त्रासदी भी छोटी नहीं है। अपनी विशालकाय कोठी में अनेक नौकर-चाकरों के बीच रहते हुए भी एकाकीपन का संत्रास झेलने और ‘अहं’ का स्तूप बनने के सिवाय वह सीखता क्या है, घर से विद्यालय तक वातानुकूलन की सुविधाएँ पाने वाला यह बच्चा मानवीय संवेदना तो दूर, मौसम के बदलाव तक से अनजान रहता है। कुछ वर्ष पूर्व गुजरात के एक स्कूल में घटी घटना इस विद्रूप की साक्षी है। कक्षा में बच्चों को ‘गरीब परिवार’ विषय पर लेख लिखने के लिए दिया गया। संपन्न घर के एक बालक ने अपनी कॉपी पर लिखा—‘एक गरीब परिवार था। उस परिवार में पापा गरीब थे। मम्मी गरीब थी। रसोइया गरीब था। झाड़वर गरीब था। माली गरीब था। यहाँ तक कि बच्चों को सँभालने वाली आया भी गरीब थी।’

‘गरीब’ शब्द के यथार्थ से कितना अनभिज्ञ है संपन्न परिवार का यह बालक। ऐसे में क्या हमें अपनी शिक्षण-विधियों को लेकर और ज्यादा गंभीर नहीं होना चाहिए? बच्चे के स्कूल जाने से पहले के समय पर और ज्यादा ध्यान नहीं देना चाहिए? माँ को बच्चे की पहली शिक्षिका और परिवार को बच्चे की प्रारंभिक पाठशाला नहीं बनना चाहिए? घुट्टी में उसे लोरियों की मिठास मिले, गुलगुले कंबल में घुसकर दादी-नानी की कहानियों का आस्वाद मिले, सहज-सामान्य रूप में उठते-बैठते जीवन को सही ढंग से जीने का पाठ मिले, क्या यह वैश्वीकरण के युग की शिक्षा से जुड़ी प्राथमिक आवश्यकता नहीं है? शाखाओं और पत्तों के जल-सिंचन से पूर्व मूल को अभिसिंचित करके ही वृक्ष के पुष्पित-पल्लवित होने की आशा की जा सकती है। तो क्यों न हम आज अपनी शिक्षा-नीति का चिंतन इसी बिंदु से शुरू करें!





# बाल विकास का गुलदस्ता है सृजनात्मक पुस्तकें

बच्चों की संवेदनशीलता को समझते हुए न्यास की पुस्तकों में विविध रूप समाहित है। ये किताबें पर्यावरण की झलक, कला के रंग, भाषा रूपी सोच जगाने, विज्ञान की बारीकियाँ समझाने, व्यावहारिक दुनिया की समझ पैदा करने, बोलने और कहानी सुनने की लगन पैदा करने, खेलों के प्रति आकर्षण और ज्यादा लागत के बिना शिक्षण सामग्री से उन्हें सिखाने के गुर बताती हैं। सृजनात्मक शिक्षा की ये पुस्तकें शिक्षकों के माध्यम से बालकों का सर्वांगीण विकास कर पाएँगी, ऐसा विश्वास है।



**शिव मोहन यादव**

**जन्म** : 01 मई, 1990

**शिक्षा** : एम.ए. (जनसंचार एवं पत्रकारिता व हिंदी)

**संप्रति** : अमर उजाला कानपुर के संपादकीय विभाग में कार्यरत।

**प्रकाशन** : बाल कहानी संग्रह 'लल्ला और बिट्टी', प्रेरक कविता संग्रह 'सिंहों के अवतार तुम्हीं हो' प्रकाशित। देश के प्रतिष्ठित पत्र-पत्रिकाओं में बाल रचनाएँ प्रकाशित।

**सम्मान** : उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान समेत विभिन्न संस्थानों से युवा और बाल साहित्य के सम्मानित।

**संपर्क** : मोबाइल— 9616926050

**ईमेल**— shivmohanyadavkanpur@gmail.com

## प्राथमिक विद्यालय के लिए यूनेस्को की विज्ञान स्रोत पुस्तक वेन हारलेन, जोस एल्स्टगीस्ट



यूनेस्को ने प्राथमिक स्तर पर विज्ञान शिक्षा में सुधार लाने के लिए जितना श्रेष्ठ कार्य करके यह किताब तैयार की है, उतने ही कौशल से न्यास ने इस पुस्तक का हिंदी में अनुवाद कराया है। लेखक वेन हारलेन ने पहले भाग में विज्ञान पढ़ाने की समझ और कौशल के विकास पर विचार रखे हैं। सहयोगी लेखक जोस एल्स्टगीस्ट ने दूसरे भाग में बताया है कि बच्चों को सक्रिय विज्ञान में कैसे व्यस्त रखा जा सकता है।

किताब तैयार करने में कई अंतरराष्ट्रीय संगठनों और दुनिया के विज्ञान के विशिष्ट शिक्षकों ने अपना योगदान दिया है। पुस्तक का इस्तेमाल प्राथमिक कक्षाओं के शिक्षकों के लिए उनकी प्रशिक्षण कार्यशाला में किया जा सकता। शिक्षक इसका उपयोग सामूहिक कार्यकलापों के साथ-साथ स्वतंत्र अध्ययन के लिए कर सकते हैं। इसमें शिक्षकों के लिए विज्ञान और तकनीकी की गतिविधियाँ सुझाई गई हैं, जिन्हें पहले शिक्षक स्वयं करें और बाद में बच्चों के साथ करके उन्हें सिखाने में सहयोग करने की बात है। कई गतिविधियों पर चर्चा और उनके आयोजन के सुझाव दिए गए हैं। इससे बालकों के क्रिया कौशल का विकास, वैज्ञानिक प्रवृत्ति की समझ, भाषा और विज्ञान की महत्ता, बच्चों की सोच के विकास की बातें भी बताई गई हैं। कक्षा के बाहर की गतिविधियों और परिवेश की समझ विकसित करने के पहलू भी बताए गए हैं।

विज्ञान गतिविधियों को सरलता से समझाने के लिए आवश्यक चित्रों को भी समाहित किया गया है। प्राथमिक विद्यालयों और शिक्षकों के साथ-साथ बच्चों के लिए अति महत्वपूर्ण पुस्तक है।

## कम लागत, बिना लागत, शिक्षण सहायक सामग्री

मेरी ऐन दास गुप्ता; अनुवाद: अरविन्द गुप्ता



खेल-खेल में बच्चों को बहुत-सी चीजें सिखाई जा सकती हैं। हर घर में अनेक वस्तुएँ उपयोग से बाहर हो जाती हैं, इन्हीं वस्तुओं से कुछ बनाने, तैयार करने, सीखने के गुर किताब में बताए गए हैं। घर में पड़ी बेकार वस्तुओं से ही बच्चों को भविष्य का रचनात्मक इनसान बनाया जा सकता है। पहले भाग में बुनियादी गणित में तहत रंग,

आकार और नाम के डोमिनो, डिजाइन बोर्ड, अंकों की किताबों को बनाने-समझने की विधियाँ बताई गई हैं। दूसरे भाग में शब्दकोश के विकास के अंतर्गत छूकर लिखने, अंकों के डिब्बे बनाने, रंगों की किताबें बनाने के तरीके सुझाए गए हैं। तीसरे भाग में समझ विकसित करने के लिए आँख-हाथ के समन्वय, गुब्बारे की गेंद बनाने, रंगीन छल्ले आदि तैयार करने की विधियाँ सुझाई गई हैं। इन सबके जरिए बच्चे देखकर, छूकर, करके सीख सकते हैं। चौथे भाग में खेल, अभिनय और सामाजिक ज्ञान संबंधी सामग्री तैयार करने के तरीके बताए गए हैं। इन कामों के लिए आपको अधिक नहीं, केवल कैंची, गोंद, टेप और मोटे कागज की जरूरत पड़ेगी। वाकई कम लागत या बिना लागत के ढेर सारी शिक्षण सामग्री तैयार की जा सकती है, ऐसी पुस्तकें बाल विकास में नायाब हीरे हैं।

## पर्यावरण प्रहरी

संपा.: मीना रघुनाथन, ममता पंड्या; अनु.: प्रियदर्शन



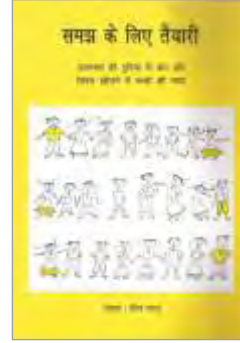
पर्यावरण के प्रति सजग और प्रेरित करने के लिए एक महत्वपूर्ण पुस्तक है—पर्यावरण प्रहरी। पुस्तक के माध्यम से बच्चों को आकाश, पेड़-पौधे, पक्षी, हवा, खुशबू आदि को देखने, समझने और महसूस करने में सहायता मिलेगी। इसमें पर्यावरण शिक्षण के लिए जागरूक करने वाले विचार, अनुभव और सबक समाहित हैं। पुस्तक में रट्टू शिक्षा से

अलग नवीन विचार हैं, जो बच्चों के व्यावहारिक ज्ञान में सहायक हैं। किताब में कुछ करने, सीखने, परिणाम तक पहुँचने, उनका विश्लेषण करने की तकनीकें हैं, जो पर्यावरण को देखने और निरीक्षण करने के बीच का अंतर बताती हैं। पर्यावरण शिक्षा को बढ़ावा देने के लिए देश में

बड़े स्तर पर काम हो रहे हैं। मानव संसाधन विकास मंत्रालय, वन और पर्यावरण मंत्रालय के अलावा राज्य स्तर पर भी कई विभाग कार्यरत हैं, जबकि यह पुस्तक पर्यावरण के अध्ययन-अध्यापन में एक निपुण शिक्षक की भूमिका अदा करती है। पर्यावरण की नीतियों, चुनौतियों से रू-ब-रू कराती यह पुस्तक कविता लेखन, वाचन, कहानी और निबंध आदि विधाओं के माध्यम से न केवल शिक्षकों में, बल्कि उनके सहयोग से बच्चों में भी चेतना पैदा करने की सामर्थ्य रखती है।

## समझ के लिए तैयारी

कीथ वारन्



बच्चे होशियार होते हैं, वे कई बातें अपने आप सीख जाते हैं, कुछ बातें समझने में समय लगता है। यह पुस्तक इसी समझ की तैयारी करने और समझ विकसित करने में सहायक है। बच्चों को समझने से पहले अनुभव की जरूरत होती है, जैसे—चीजों को छूना, देखना, सुनना, सूँघना, चखना, चुनना, क्रम में रखना आदि। बच्चे जिज्ञासु बहुत होते

हैं, तो उनको स्वयं उत्तर खोजने के लिए प्रेरित करना चाहिए, इससे उनकी समझ शक्ति विकसित होगी। इस पुस्तक में इन्हीं बातों का खयाल रखा गया है। छोटे-बड़े आकार की वस्तुओं को क्रम से सजाना। कागज को कुछ टुकड़ों में काटना और फिर जोड़ना। रंगों को पहचानने की समझ पैदा करना। कई प्रकार की आकृतियों को समझना। हल्के-भारी को समझना। गरम, ठंडा और समझना। दूरी, गति, समय को समझना। समानता में भेद आदि की समझ पैदा करने में यह पुस्तक बेहद उपयोगी है। अध्यापक के माध्यम से ये सब चीजें बच्चों को आसानी से समझाई जा सकती हैं। अगर बच्चों में सही समय पर सही समझ विकसित की जाए, तो वे समय से पहले बड़ों को समझाने में सक्षम हो सकते हैं।

## बच्चे की भाषा और अध्यापक

कृष्ण कुमार

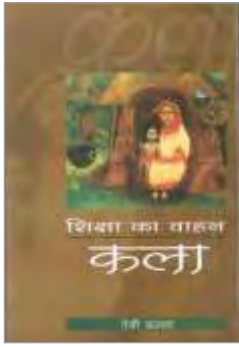


बच्चे की भाषा के विकास में एक अध्यापक की भूमिका सर्वोपरि होती है। भाषा अपनी बात को दूसरों तक पहुँचाने का सशक्त माध्यम तो है, लेकिन हमें बच्चे की सोचने, समझने और महसूस करने की उपयोगिता को भी ध्यान में रखना चाहिए। संसार का हर बच्चा, चाहे उसकी मातृभाषा कोई भी हो, भाषा का इस्तेमाल कुछ

उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए करता है। एक बड़ा उद्देश्य होता है दुनिया को समझना, और इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए भाषा एक बेहतरीन हथियार है। एन.सी.ई.आर.टी. के पूर्व निदेशक कृष्ण कुमार ने इस निर्देशिका के जरिए अध्यापक को बालमन और बालभाषा समझने के लिए प्रेरित किया है। इसके माध्यम से बताया गया है कि अभिभावक या शिक्षक बच्चों को पूरी बात कहने दें। वह जो बात बोल रहा है, उसमें रुचि लें। मतभेद जाहिर करने की इच्छा हो तो उस पर काबू करें। पुस्तक में अनेक गतिविधियाँ और क्रियाकलाप सुझाए गए हैं, जो बच्चों की भाषा को बेहतर करने के लिए पर्याप्त हैं। बच्चे की भाषा के निखार के लिए उसे लिखने, पढ़ने, पढ़कर सुनाने, किताब बनाने, कविता सुनने और गाने के लिए प्रेरित किया है।

## शिक्षा का वाहन कला

### देवी प्रसाद



इस पुस्तक में बताया गया है कि कला बालक को रचनात्मक तो बनाती ही है, उसे दुनिया की समझ भी कराने में भी सहायक है। सृजनात्मक शिक्षा के अंतर्गत देवी प्रसाद द्वारा रचित यह पुस्तक उनकी वर्षों की मेहनत, सूझ-बूझ का उपहार है। पुस्तक का प्राक्कथन लिखते हुए पूर्व राष्ट्रपति व तत्कालीन गवर्नर जाकिर हुसैन साहब

ने कहा है कि यह केवल कला शिक्षकों के पढ़ने की किताब नहीं है, यह सभी शिक्षकों के पढ़ने की चीज है। आनंद कुमारस्वामी कहते हैं कि कलाकार कोई विशेष प्रकार का मनुष्य नहीं होता, बल्कि हर मनुष्य एक विशेष प्रकार का कलाकार होता है। लेखक ने कला शिक्षा के महत्व पर प्रकाश डालते हुए बताया है कि यह शिक्षा आखिर क्यों आवश्यक है। कला शिक्षा के मामले में हमें बच्चों की नजर से देखना चाहिए। दरअसल, बच्चे की कलाकृति की सबसे सुंदर चीज उसकी गलती होती है। बच्चे अपनी नजर से क्या देखते हैं, यह जानने के लिए उसे कूची, रंग और कोरा कागज थमा देने चाहिए, वह जो कलाकृति तैयार करेगा, वह उसकी सोच, उसकी नजर होगी। लेखक ने बच्चों के चित्रों के विकास क्रम की मुख्य अवस्थाओं का भी वर्णन किया है। बच्चों द्वारा बनाए आकर्षक चित्र भी किताब में समाहित हैं। किशोर अवस्था और उसके बाद की अवस्था, बच्चों का रंग बोध का चित्रण है। किशोर अवस्था में शिक्षा की बुनियाद कला हो, इस पर ध्यान दिया है। किशोर अवस्था में शिक्षा कला की सृजनात्मक शक्ति के विकास पर चर्चा की गई है। लेखक ने कला शिक्षा पद्धति के विविध आयामों का भी उल्लेख किया है। कला शिक्षा बच्चों का संवेदी पहलू है, कला की रचनात्मकता बाल विकास में महत्वपूर्ण है।



## कहानी कहने की कला

### संपादन: पंकज चतुर्वेदी

कहानी कहने की परंपरा की शुरुआत तो भाषा के आरंभ से ही हो गई थी। टेलीविजन और इंटरनेट के इस दौर में भी कहानी सुनने, सुनाने का दौर कमजोर नहीं हुआ, बल्कि इन पर भी कहानी कहने की कला ने धाक जमाई है। पुस्तक में कहानी कहने की बारीकियों को बखूबी समझाया गया है। यह पुस्तक राष्ट्रीय बाल केंद्र की एक कार्यशाला में आमंत्रित विशेषज्ञों के विचारों का सार है। इसमें कहानी सुनाने की आवश्यकता और महत्ता के साथ-साथ कहानी कहने की शैली, सुनाने में गति स्वर और अभिनय की भूमिका, कहानी वाचन के लिए सहायक उपकरण या पुस्तकों के उपयोग पर भी चर्चा की गई है। कहानी वाचन में बच्चों के वैज्ञानिक नजरिये को भी अहम बताया गया है। डॉ. हरिकृष्ण देवसरे ने कहानी के अनिवार्य तत्वों में भाषा की सरलता, उत्सुकता, रहस्य-रोमांच और बच्चों से जुड़ाव को महत्व दिया है। बच्चों के आयुवर्ग के अनुसार कहानी के चुनाव पर ध्यान आकर्षित किया गया है। कहानी की प्रस्तुति और अभिनय के साथ उन्होंने कथा वाचन के लाभ भी बताए हैं।

## खेल-खेल में बच्चों का विकास

### मीना स्वामिनाथन, प्रेमा डैनियल; अनु.: सुधीर नाथ झा



अब जब बच्चे मोबाइल की दुनिया तक सीमित होकर रह गए हैं, और शारीरिक विकास में कमजोर हो रहे हैं, तब खेल के मैदान उनके लिए बहुत जरूरी हो जाते हैं। बच्चों को खेलों के प्रति आकर्षित करने वाली यह पुस्तक 1983 में लिखी गई और 1984 में यूनिसेफ से प्रकाशित हुई। पुस्तक की लेखिकाओं ने प्रत्येक गतिविधि में खेल का लक्ष्य, समूह का आकार, सामग्री और खेल की तैयारी के अवयव सुझाए हैं। शिक्षकों की मदद से बच्चे ये गतिविधियाँ आसानी से कर पाएँगे। इस पुस्तक को शिक्षक मार्गदर्शिका के रूप में देखा जाता है। शारीरिक, मानसिक और बौद्धिक विकास के साथ-साथ मनोरंजन और साझेदारी की प्रेरणा भी मिलती है। बच्चों को सैकड़ों गतिविधियों से रू-ब-रू कराने वाली यह पुस्तक लगभग दो सौ प्रकार के खेल सिखा सकती है। हालाँकि वर्तमान समय में अभिभावकों की देखा-देखी बच्चों पर भी मोबाइल का खुमार चढ़ने लगा है, लेकिन इसकी खेल गतिविधियों को संपन्न करके बच्चे खेलों की ओर आकर्षित होंगे, ऐसा विश्वास है। तीन से पाँच वर्ष के बच्चों के लिए पुस्तक में सभी आसन बेहद उपयोगी हैं। ●●●

# आओ भारतीय भाषाएँ सीखें

हिंदी	संस्कृतम्	पंजाबी	उर्दू	कश्मीरी	सिंधी	मराठी	कोंकणी	गुजराती	नेपाली	बांग्ला
खेलकूद	क्रीडाः	खेडकूद	खेलकूद	गिंदुन-द्रव्कुन	रांदियूं/राधूं	खेळ	खेळ-क्रीडा	रमतगमत	खेलकुद	खेलाधूला
हॉकी	हॉकीक्रीडा	हाकी	हाकी	हाकी	हॉकी	हॉकी	हॉकी	हॉकी	हकी	हकि
कबड्डी	कबड्डी-क्रीडा	कौडी, कबड्डी	कबड्डी	कवठ, कबड	कबडी, कोडी-कोडी	हुतूतू	कबड्डी	हु तु तु तु कब्बडी	कपर्दी	कपाटि, हा-डु-डु-खेला
कुश्ती	मल्लस्पर्धा	घल, कुश्ती	कुश्ती	दबदब कुश्ती	मल्ह, कुश्ती	कुस्ती, मल्ल युद्ध	कुस्ती	कुस्ती	कुस्ती	कुस्ति, व्यायाम
क्रिकेट	क्रिकेटम्	क्रिकट	क्रिकेट	किरकट	क्रिकेट	क्रिकेट	क्रिकेट	क्रिकेट	क्रिकेट	क्रिकेट
गोल्फ	गोल्फक्रीडा	गोलफ	गोल्फ	गाफ	चौगानबाजी गोल्फ	गोल्फ	गोल्फ	गोल्फ	गोल्फ	गल्फ
घुड़सवारी	अश्वारोहणम्	घुड़सवारी	घुड़सवारी	गुर्य सवॉर्य	घोड़े सुवारी	घोडेस्वारी	घोडेस्वारी	घोड़े सवारी	घोडसवारी	घोड़सओयारि
तैराकी	प्लवनम्	तराकी	तैराकी	छांठ	तैराकी, तरणु	जलतरण-पटुता, पोहोणे	पेंवपीविद्या	तरण	पौडाइ, प्लवनविद्या	साँतार, सतरन
पोलो	पोलोक्रीडा	पोलो	पोलो	पोलो	पोलो	पोलो	पोलो	पोलो	पोलो	पोलो
नौकादौड़	नौचालन-स्पर्धा	किशती-दौड़	कशतीरानी	नाव दोर	बेड़ी डोड़	नौकादौड़, नौकांची शर्यत	नौका होड	नौकादोड	नौकादोड	नौकादौड़
मुक्केबाजी	मुष्टिक्रीडा	मुक्केबाजी	मुक्केबाजी	मुश्तबाँजी	ठेंशेबाजी	ठोसा ठोसी बाँक्सिंग	मुक्काबाजी, बाँक्सिंग	मुक्काबाजी, बाँक्सिंग	मुक्काबाजी बक्सिङ्ग	बाँक्सिंग
भालाफेंक	शूलक्षेपणम्	नेजा-सुटट, नेजेबाजी	नेजा-अंदाजी	बलमि कश	भाले-उछल, नेजा अंदाजी	भालाफेंक	भालाफेंक	भालाफेंकप	भालाफेंक	बल्लम जेवेलियन
शतरंज	शतरंज-क्रीडा	शतरंज	शतरंज	शतरंज	शतरंजि	शतरंज, बुद्धिबळ	शतरंज, चैस, चोपट, चोपाट	बुद्धिबळ	बुद्धिचाल, बुद्धिबल	शतरंज/दाबा

असमिया	मणिपुरी	ओड़िआ	तेलुगू	तमिल	मलयालम	कन्नड़	डोगरी	संताली	मैथिली	बोड़ो
खेलाधुला खेल	साना-खोतनबा	खेल-कसरत	आटपाटलु	विळैयाट्टुगळ	कळिकळ्	आटपाट/आट ओटगळु	खेठ	खिलोन्ड	खेलकूद	गेलेनाय-रंजानाय
हकि	हॉकी	हकि	हाकी	हाक्कि	होक्कि	हाकि	हाकी	हकि	हौकी	हकि
हाईगुदु, काबादि	कबड्डी	डुडु/किति-किति-कवाडि	चेडुगुडु	कबड्डी/चुडुकुडु	चटुकुटु/कवाडि	कबड्डि, हुतुतु	कौड्डी	कवाडी	कबड्डी	हादु-गुद, खाबादि
कुस्ति	मुक्ना	कुस्ति	कुस्ती	गुस्ति	गुस्ति	कुस्ति	घोल, कुश्ती	कुश्ती, अताअती	कुस्ती	खमलायनाय
क्रिकेट	क्रिकेट	क्रिकेट	क्रिकेटु	किरिक्कट्टु	क्रिक्कट्टु	क्रिकेट	क्रिकेट	क्रिकेट	क्रिकेट	क्रिकेट
गोल्फ	गोल्फ	गोल्फ, गल्फ	गोल्फ	गोल्फ्	गोल्फ	गोल्फ	गोल्फ	गोल्फ	गोल्फ	गल्फ
घोरौत उठा	सगोल तोड्बी	घोड़ा चढ़िवा	गुरंपु स्वारि	कुदिरै सवारि	कुतिर सवारि	कुदुरे सवारि	घोडसुआरी	सादमलागा	घोडसवारी	गाराइयाव गाखोनाय
साँतोर खेल	ईरोइबा	संतरण, पंहरिवा	ईत	नीच्चल्	नींतल्	ईजुगार	तराकी	पायराक् हेपेराव	तैराकी, हेलब	सानस्रिनाय
पल (पोलो)	शगोल काडजै, पोलो	पोलो	पोलो	पोलो	पोळो	पोलो	पोलो	पोलो सादम बोल खेल	पोलो	पल
नाओदौर	ही तान्नबा	नौका चालना	पडवलपदेमु	पडहोट्टम	वळळंकळि	दोणि स्पर्धा	किश्ती-दौड	लावकादौड	नौकादौड, नाओदौड	नाउ गेलेनाय
बक्सिं	खूत्मुम्ना शूनबा	मुष्टिजुद्ध, बाक्सिंग	बाक्सिंगु	कुत्तुच्च्यझडै	बोक्सिंगु	मुष्टि युद्ध, बाक्सिंग	मुक्केबाजी (बाक्सिंग)	बोक्सिंग	मुक्केबाजी	सौलायनाय, बक्सिं
याठी-दलिओवा खेल	ता लड्वा, जेवेलियन थो	भाली फिंगा, वर्छा फिंगा	जेवेलियन थो	ईट्टि ऐरिदल्	जावलिनू त्रो	ईटि-एसेयाट	नेजेबाजी, नेजा-अंदाजी	बल्लाम, टेंटा	भालाफेंक	जं खुबैनाय, जेबलिन थ
शतरंज, पाशाखेल, दाबाखेल	शतरंज, चैस	पशाखेल	चदरंगमु	चतुरंगम्	चतुरंगम्	चदुरंग, पगड़ेयाट	शतरंज, चौपड	दाबा	सतरंज, चौसारि	दाबा, सेस, सतरन्ज

(केंद्रीय हिंदी निदेशालय द्वारा प्रकाशित भारतीय भाषा कोश से साभार)



# अंग्रेजी शासन काल में पाठ्यपुस्तकों से भारतीय ज्ञान परंपरा का लोप : कारण व परिणाम

भारतीय ज्ञान परंपरा सदियों से समृद्ध रही है। मानव सभ्यता के विकास का इतिहास यह बतलाता है कि तक्षशिला, नालंदा, विक्रमशिला आदि विश्वविद्यालय विश्व इतिहास में प्राचीनतम विश्वविद्यालय रहे हैं। अनेक विदेशी यात्रियों, जिन्होंने शताब्दियों पूर्व समय-समय पर भारत की यात्राएँ की हैं, ने अपने संस्मरणों में लिखा है कि भारत में ज्ञान-विज्ञान की समृद्ध परंपरा रही है। कई विदेशी यात्रियों ने भारतीय विश्वविद्यालयों में अध्ययन भी किया था, हेनसांग (चीन) ने



नालंदा विश्वविद्यालय में बौद्ध धर्म के साथ ही चिकित्साशास्त्र, दर्शन, तर्कशास्त्र, गणित, ज्योतिर्विज्ञान और व्याकरण का अध्ययन किया। इसी प्रकार अलबरूनी ने भारत में संस्कृत, प्रकृति, विज्ञान, साहित्य, दर्शन और धर्म का अध्ययन किया। (अमर्त्यसेन, भारतीय अर्थतंत्र, इतिहास और संस्कृति, पृष्ठ 139 व 160)

सार्वजनिक शिक्षा की दृष्टि से भी भारत अग्रणी रहा। पं. सुंदरलाल ने अपनी पुस्तक 'भारत में अंग्रेजी राज' में लिखा है कि अंग्रेजों के आने के पहले सार्वजनिक शिक्षा और विद्या प्रचार की दृष्टि से भारत संसार के अप्रतिम देशों में गिना जाता था। 19वीं सदी के प्रारंभ में और उसके कुछ बाद तक भी यूरोप के किसी देश में शिक्षा का प्रचार इतना अधिक नहीं था जितना कि भारतवर्ष में, और न कहीं भी प्रतिशत आबादी के हिसाब से पढ़े-लिखे लोगों की तादाद इतनी अधिक थी जितनी की भारत

में। (पं. सुंदरलाल 'भारत की शिक्षा का सर्वनाश, भारत में अंग्रेजी राज' नामक 1939 में प्रकाशित बृहद् ग्रंथ का 36वाँ अध्याय, पृष्ठ 51)

इतना होने पर भी भारतीय ज्ञान-परंपरा और तत्व चिंतन को अंग्रेजी शासन काल में पाठ्यपुस्तकों में कोई स्थान नहीं दिया गया यद्यपि वह इसकी हकदार थी। आखिर ऐसा क्यों हुआ?

अंग्रेजों ने जिस चातुर्य, योजना और हिम्मत के साथ भारतीय ज्ञान-परंपरा और भारतीय भाषाओं को पाठ्यक्रमों से अलग किया उसे समझने की आवश्यकता है। वैसे इस प्रकार का कार्य आक्रांताओं ने भारत में ही नहीं, अपितु उन सभी देशों में भी किया, जहाँ उन्होंने अपने उपनिवेश बनाए। भारत में ऐसा करने का विशेष महत्व इसलिए है कि क्योंकि यहाँ की भाषाएँ व ज्ञान-परंपरा अन्य देशों की तुलना में अधिक समृद्ध रही हैं।



## प्रो. गोविंद प्रसाद शर्मा

मार्च 1939 में जन्मे डॉ. गोविंद प्रसाद शर्मा ने राजनीति विज्ञान से एम.ए. और पीएच.डी. की है। उन्होंने महारानी लक्ष्मीबाई महाविद्यालय एवं कमलाराजा कन्या महाविद्यालय के प्राचार्य के रूप में अपनी सेवाएँ दीं। वह उच्च शिक्षा विभाग के ग्वालियर-चंबल डिवीजन में अतिरिक्त निदेशक भी रहे। उन्होंने मध्य प्रदेश हिंदी ग्रंथ अकादमी के निदेशक और मध्य प्रदेश बोर्ड ऑफ सेकेंडरी एजुकेशन के उपाध्यक्ष के तौर पर भी काम किया। उन्होंने छह से अधिक अकादमिक पुस्तकों का लेखन किया है। साथ ही, उन्होंने कुछ संचयनों का संपादन भी किया है। उनके कई शोध पत्र भी प्रकाशित हो चुके हैं। वर्तमान में श्री शर्मा राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत के अध्यक्ष पद पर कार्यरत हैं।

प्रारंभ से लेकर अंग्रेजों के आगमन के पूर्व तक भारतीय शिक्षा में अध्यापन के विषयों में तथा शिक्षण व्यवस्था में कोई बुनियादी परिवर्तन नहीं आया था तथा शासकीय स्तर पर शिक्षा पद्धति में कोई हस्तक्षेप नहीं हुआ करता था। यहाँ तक कि अंग्रेजों के आने के बाद भी प्रारंभिक काल में शिक्षण संस्थानों में पढ़ाए जाने वाले विषयों को लेकर अथवा शिक्षा व्यवस्था को लेकर उनकी कोई रुचि नहीं थी। धर्मपाल ने लिखा है कि 'प्रारंभ के वर्षों में भारत के धर्म, तत्वज्ञान, ज्ञान-साहित्य या शिक्षा प्रथा में अंग्रेजों को लेशमात्र भी रुचि नहीं थी'। (धर्मपाल : रमणीय वृक्ष 18वीं शताब्दी में भारतीय शिक्षा, पृष्ठ संख्या 10)

“ चार्ल्स ग्रांट एक प्रस्ताव ब्रिटिश पार्लियामेंट में लाना चाहते थे, जिसमें भारतीय शिक्षा और भाषा के संबंध में कंपनी के दायित्वों की चर्चा थी। लेकिन इस प्रस्ताव को लाने से पूर्व चार्ल्स ग्रांट पार्लियामेंट के सदस्यों को अपने विचारों से अवगत करवाना चाहते थे। इसके लिए उन्होंने 1792 में एक प्रस्ताव तैयार किया, जिसका शीर्षक था—‘ऑब्जर्वेशन ऑन द स्टेट ऑफ सोसायटी अमंग द एशियाटिक सब्जेक्ट्स ऑफ ग्रेट ब्रिटेन, पार्टिकुलरली विद रिस्पेक्ट टु मॉरल्स, एंड ऑन द मींस ऑफ इंप्रूविंग इट’। ”

भारत की शिक्षा एवं पाठ्यक्रम को लेकर पहली बार अंग्रेजों की रुचि ब्रिटिश पार्लियामेंट के सदस्य चार्ल्स ग्रांट के प्रयत्नों से जागृत हुई और सार्वजनिक भी हुई। चार्ल्स ग्रांट ने भारत में शिक्षा और पढ़ाए जाने वाले विषयों के संबंध में अपने विचारों को 1792 में ब्रिटिश पार्लियामेंट में विचार-विमर्श हेतु तैयार किए गए एक प्रस्ताव में व्यक्त किए। संदर्भ यह था कि 1793 में 'ईस्ट इंडिया कंपनी' का चार्टर नवीनीकरण के लिए ब्रिटिश पार्लियामेंट में प्रस्तुत होना था। चार्ल्स ग्रांट चाहते थे कि प्रस्ताव पर विचार करने से पूर्व पार्लियामेंट के सदस्य भारत की जनता के प्रति कंपनी के कर्तव्यों को कुछ जान सकें। इस संबंध में चार्ल्स ग्रांट एक प्रस्ताव ब्रिटिश पार्लियामेंट में लाना चाहते थे, जिसमें भारतीय शिक्षा और भाषा के संबंध में कंपनी के दायित्वों की चर्चा थी। लेकिन इस प्रस्ताव को लाने से पूर्व चार्ल्स ग्रांट पार्लियामेंट के सदस्यों को अपने विचारों से अवगत करवाना चाहते थे। इसके लिए उन्होंने 1792 में एक प्रस्ताव तैयार किया, जिसका शीर्षक था—‘ऑब्जर्वेशन ऑन द स्टेट ऑफ सोसायटी अमंग द एशियाटिक सब्जेक्ट्स ऑफ ग्रेट ब्रिटेन, पार्टिकुलरली विद रिस्पेक्ट टु मॉरल्स एंड ऑन द मींस ऑफ इंप्रूविंग इट’। इस प्रस्ताव की प्रतियाँ पार्लियामेंट के सदस्यों के बीच बाँटी गईं। इस प्रस्ताव में चार्ल्स ग्रांट ने कई सुझाव प्रस्तुत किए, उनमें से प्रमुख सुझाव इस प्रकार हैं—

1. भारत में शिक्षा का प्रसार कंपनी सरकार की वैधानिक जिम्मेदारी हो।
2. भारत में पाश्चात्य शिक्षा लागू की जाए।
3. शिक्षा के विषय हों—विज्ञान, इंजीनियरिंग, कला-कौशल, सामान्य ज्ञान और साहित्य।
4. अंग्रेजी भाषा को शिक्षा का माध्यम बनाया जाए।
5. अंग्रेजी भाषा को शिक्षा व सरकारी कामकाज की भाषा बनाया जाए।
6. अंग्रेजों को सरकार और जनता के बीच संपर्क भाषा के रूप में प्रयुक्त किया जाए।
7. अंग्रेजी ऐसी कुंजी है जिससे भारत के लिए विचारों की नई दुनिया के द्वार खुल जाएँगे और अंग्रेजी स्कूलों में नौजवानों की भीड़ लग जाएगी। (तुलसीराम : भारत में अंग्रेजी, क्या खोया-पाया, पृष्ठ क्रं. 16)

चार्ल्स ग्रांट के इस प्रस्ताव के माध्यम से पहली बार भारत में भाषा और पाठ्यचर्चा के प्रति अंग्रेजों की रुचि जागृत हुई। इसी रुचि ने आगे चलकर भारत में शिक्षा के पूरे परिदृश्य को बदल दिया। इसका एक परिणाम यह भी हुआ कि अंग्रेजी भाषा को सरकारी भाषा के रूप में और संपर्क भाषा के रूप में स्थापित होने की प्रक्रिया प्रारंभ हो गई।

जहाँ तक प्रश्न है चार्ल्स ग्रांट के प्रस्ताव के आधार पर भारत में कौन-कौन से विषय पढ़ाए जाने चाहिए तो उस समय भारत और ब्रिटेन की कक्षाओं में पढ़ाए जाने वाले विषयों की संक्षिप्त जानकारी प्राप्त करना उचित रहेगा।

19वीं शताब्दी के प्रारंभ तक भारत में शिक्षा के अंतर्गत धर्मशास्त्र, न्यायशास्त्र, तर्कशास्त्र, आयुर्वेद, ज्योतिष विज्ञान, खगोल शास्त्र जैसे विषय पढ़ाए जाते थे। इसके अतिरिक्त प्राथमिक स्तर में अक्षर ज्ञान, वाचन, लेखन, अंक गणित पाठ्यक्रम का भाग था। (धर्मपाल : रमणीय वृक्ष 19वीं शताब्दी में भारतीय शिक्षा)

उस समय इंग्लैंड के स्कूलों में धार्मिक शिक्षा, पठन, लेखन, अंकगणित आदि विषय पढ़ाए जाते थे। इससे पता चलता है कि भारत के स्कूलों के पाठ्यक्रम से इंग्लैंड के स्कूलों का पाठ्यक्रम किसी भी प्रकार उन्नत नहीं था। ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय में प्रारंभ में प्रमुखतः दर्शन, व्याकरण, खगोलशास्त्र, प्राचीन इतिहास (हिब्रू और यूरोप) के अतिरिक्त 1669 से वनस्पति शास्त्र, 1780 से चिकित्साशास्त्र तथा 1803 से रसायनशास्त्र का अध्ययन कराया जाता था। (धर्मपाल : रमणीय वृक्ष 18वीं शताब्दी में भारतीय शिक्षा, पृष्ठ संख्या 14)

ईस्ट इंडिया कंपनी ने प्रारंभिक वर्षों में सीधे तौर पर भारत में शिक्षा संबंधी कार्य नहीं किया। अलबत्ता कुछ मिशनरी संस्थाओं द्वारा किए गए कार्यों की कंपनी ने सराहना अवश्य की तथा उन्हें आर्थिक सहयोग भी दिया। मिशनरी संस्थाओं द्वारा अंग्रेजी के

प्रचार-प्रसार को कंपनी ने अच्छा माना। प्रारंभ में तो मिशनरीज ने बच्चों को उनकी मातृभाषा में पढ़ाया, पर बाद में वे अंग्रेजी माध्यम से पढ़ाने लगे। शिक्षण संस्थाओं में पढ़ाए जाने वाले विषयों तथा उनके पाठ्यक्रमों में दखल का प्रारंभ तो बीज रूप में 1793 के चार्ल्स ग्रांट के ब्रिटिश पार्लियामेंट के सदस्यों को वितरित प्रस्ताव के द्वारा ही हो गया था। तथापि 21 वर्षों बाद 1813 के चार्टर एक्ट द्वारा वह खुले रूप में सामने आया। वैसे तो इस चार्टर एक्ट में बहुत कुछ कहा गया था तथापि चार्टर एक्ट पर चर्चा के समय भारत की मूल शिक्षा परंपरा के विषय में ब्रिटिश पार्लियामेंट में विस्तार से चर्चा की गई। इस चर्चा में भारत में धार्मिक तथा नैतिक सुधार का विचार प्रमुख था। **(धर्मपाल : रमणीय वृक्ष 18वीं शताब्दी में भारतीय शिक्षा, पृष्ठ संख्या 18)**

जहाँ तक भारतीयों को दिए जाने वाले ज्ञान का प्रश्न है, इस संबंध में कहा गया है कि भारतीयों में उपयोगी ज्ञान का प्रचार और नैतिक उन्नति की जानी चाहिए। यह उपयोगी ज्ञान कौन-सा है, यह स्पष्ट नहीं था। तथापि उपयोगी ज्ञान का अभिप्राय यूरोपीय विज्ञान से ही था। इस बात की पुष्टि होल्ड मैकेंजी के इस कथन से होती है कि 'यदि यूरोपीय विज्ञान सत्य और श्रेष्ठ है तो उसे भारत के लोगों तक पहुँचाया जाना चाहिए। हमारी शिक्षा योजना का प्रारंभ से ही अनिवार्य अंग होना चाहिए और सरकार को यह बात अधिकृत रूप से घोषित कर देनी चाहिए।' **(शार्प सेलेक्शंस फ्रॉम एजुकेशनल रिकॉर्ड्स प्रथम भाग 1781-1839, पृष्ठ संख्या 27-27; उद्धृत राष्ट्रीय शिक्षा का आंदोलन का इतिहास, संपादक देवेन्द्र स्वरूप, पृष्ठ संख्या 63)**

इसी प्रकार नैतिकता का अभिप्राय भारतीय नैतिक मूल्य या नैतिक अवधारणाएँ नहीं थीं, अपितु ईसाइयत थीं। यह माना गया कि नैतिक उन्नति ईसाइयत से ही होगी।

भारतीयों को दी जाने वाली शिक्षा के संबंध में उस समय अंग्रेज शासकों में दो पक्ष थे। एक पक्ष इस मत का था कि भारतीयों को भारतीय इतिहास, संस्कृत, फारसी, अरबी भाषाएँ पढ़ाई जानी चाहिए। यह पक्ष बहुत तेजी से शिक्षा में परिवर्तन का पक्षधर नहीं था, अपितु धीरे-धीरे भारतीय जन की भावनाओं को आहत किए बिना ही शिक्षा में परिवर्तन का समर्थक था। इस मत के समर्थन में मनरो, जॉन मैल्कम, एल्फिंस्टन और मेटकॉफ प्रमुख थे। दूसरा पक्ष यह मानता था कि भारतीयों को पश्चिमी साहित्य, अंग्रेजी पश्चिमी विज्ञान की शिक्षा दी जानी चाहिए। इस विचार के समर्थकों में चार्ल्स ग्रांट, विल्बरफोर्स, लॉर्ड कार्नवालिस तथा लॉर्ड वेलेजली प्रमुख थे।

इस बीच सन् 1823 में लॉर्ड एमहर्स्ट ने सामान्य लोक शिक्षा समिति (ए जनरल कमिटी ऑफ पब्लिक इन्स्ट्रक्शन) का गठन किया। इसके अधिकांश सदस्य भारतीय साहित्य और शिक्षा पद्धति के समर्थक थे। वे चाहते थे कि परंपरागत विषयों को पढ़ाते हुए यूरोपियन साहित्य और विज्ञान को भी समाहित किया जाए। समिति

के प्रयासों से विज्ञान की यूरोपियन पुस्तकों का संस्कृत और अरबी में अनुवाद भी हुआ।

शिक्षा संबंधी उपर्युक्त कार्यों से बोर्ड ऑफ डायरेक्टर्स प्रसन्न नहीं थे। अतः उन्होंने इस बात पर जोर दिया कि हमें संस्कृत साहित्य या अरबी, फारसी साहित्य के अध्ययन-अध्यापन पर जोर नहीं देना चाहिए। अपितु हमारा उद्देश्य उपयोगी साहित्य के अध्ययन का होना चाहिए। उपयोगी साहित्य का अभिप्राय था विज्ञान। सन् 1829 में लॉर्ड विलियम बैंटिक जो उस समय भारत में गवर्नर जनरल था, ने शिक्षा समिति को एक पत्र लिखा जिसका अभिप्राय था कि भारत में यूरोपियन विज्ञान, नैतिकता और सभ्यता के प्रकाश में कार्य किया जाए तथा सरकार की यह पक्की नीति रहेगी कि प्रशासनिक कार्य में अंग्रेजी लागू की जाए। नैतिकता का अभिप्राय था क्रिश्चियनिटी और सभ्यता का अभिप्राय था पाश्चात्य सभ्यता।

सन् 1834 में मैकाले भारत के गवर्नर जनरल की कौंसिल के सदस्य बनाए गए। गवर्नर जनरल की कौंसिल में विधि सदस्य के साथ ही उन्हें सामान्य लोक शिक्षा समिति का भी अध्यक्ष बनाया गया। अध्यक्ष के नाते उनके सम्मुख भारतीय शिक्षा को लेकर उस समय चलने वाली भारतीय शिक्षा पद्धति समर्थक और अंग्रेजी शिक्षा पद्धति समर्थकों का विवाद लाया गया। विवाद बहुत स्पष्ट था क्या शिक्षण संस्थाओं में शिक्षण की पुरानी प्रचलित पद्धति को ही रखा जाए व विज्ञान पढ़ाने के लिए यूरोपीय विज्ञान का अनुवाद भारतीय भाषाओं में किया जाए ताकि उसे भारतीय भाषाओं में पढ़ाया जा सके या विज्ञान को आधुनिक भाषा अंग्रेजी के माध्यम से पढ़ाया जाए। प्रश्न यह था कि शिक्षा का माध्यम क्या हो? अंग्रेजी या देशज भाषाएँ, माध्यम के रूप में अंग्रेजी भाषा अनिवार्य हो या ऐच्छिक।

उस समय के गवर्नर लॉर्ड विलियम बैंटिक ने इस प्रश्न पर तथा अन्य बिंदुओं पर परामर्श व उचित समाधान के लिए इसे शिक्षा समिति के अध्यक्ष लॉर्ड मैकाले के पास भेज दिया। मैकाले भारत आने के पूर्व ही अपना मानस अंग्रेजी शिक्षा के लिए बना चुके थे। उन्होंने भारत में शिक्षा के स्वरूप को लेकर और शिक्षा के माध्यम को लेकर बुनियादी काम पहले ही कर लिया था। अतः उन्होंने पहला काम तो यह किया कि भारतीय शिक्षा पद्धति के समर्थकों के सभी तर्कों के आधार को ही खारिज कर दिया। परिणामतः भारतीय पद्धति और माध्यम से शिक्षण की बात ही समाप्त हो गई। इसके पश्चात मैकाले ने 1813 के चार्टर एक्ट में प्रयुक्त शिक्षा संबंधी कुछ प्रमुख बिंदुओं पर अपना निर्णायक अभिमत दिया।

मैकाले ने कहा चार्टर एक्ट में प्रयुक्त 'लिट्टरेचर' शब्द का अभिप्राय है 'इंग्लिश लिट्टरेचर'। इसका अभिप्राय संस्कृत या अरबी साहित्य नहीं है। इसी प्रकार 'लर्निंग नेटिव ऑफ इंडियाज' का अभिप्राय है 'अंग्रेजी भाषा साहित्य, पाश्चात्य विज्ञान और पश्चिम के विद्वानों का साहित्य'। संस्कृत और अरबी साहित्य के विद्वानों का

साहित्य नहीं। 'रिवाइवल एंड इंप्रूवमेंट ऑफ लिटरेचर' का अर्थ है, अंग्रेजी साहित्य के अध्ययन का विकास और प्रसार, न कि संस्कृत और अरबी साहित्य का विकास और प्रसार। मैकाले के इस अभिमत का परिणाम यह हुआ कि शिक्षण संस्थाओं में अध्यापन के लिए जो पाठ्यक्रम बना, उसमें भारतीय ज्ञान, भारतीय भाषाएँ और भारतीय दर्शन गायब हो गए तथा अंग्रेजी साहित्य, यूरोपियन विज्ञान और चिंतन पाठ्यक्रम आ गए। साथ ही शिक्षा का माध्यम भी अंग्रेजी हो गया। लॉर्ड विलियम बैंटिक ने 1835 में मैकाले की अनुशंसाओं को स्वीकार कर एक आदेश जारी किया जिसमें तीन बातें प्रमुखता से

“ शिक्षा का माध्यम अंग्रेजी होने का यह परिणाम हुआ कि छात्रों ने उन पुस्तकों को पढ़ा जो अंग्रेजों ने अंग्रेजी में लिखी थीं। भारतीय विचारक और उनकी पुस्तकों का अध्ययन होता ही नहीं था। परिणामतः सामाजिक ज्ञान, इतिहास, भूगोल सभी विषयों में जो अंग्रेजों ने लिखा, हमने उसे ही पढ़ा और उसे ही सत्य मान लिया। हमारी शिक्षा की भावभूमि ही बदल गई। हमारा इतिहास बोध भोथरा हो गया। हमारा इतिहास वह हो गया जो जेम्समिल ने लिखा। हम अपनी संस्कृति, सभ्यता, भूगोल, इतिहास और समाज को अंग्रेजी आँखों से देखने लगे और उनके लिखे पर विश्वास करने लगे। ”

कही गई। एक, भारतीय जनता में यूरोपियन साहित्य और विज्ञान का प्रसार किया जाए। दूसरा, भारतीय साहित्य को छापने के लिए सरकार की ओर से कोई धनराशि नहीं दी जाएगी। तीसरा, जो भी धनराशि सरकार के पास उपलब्ध है, उसका उपयोग भारतीय जनता को अंग्रेजी भाषा के माध्यम से अंग्रेजी साहित्य और विज्ञान को पढ़ाने के लिए खर्च किया जाएगा। (शार्प सेलेक्शंस फ्रॉम एजुकेशनल रिकॉर्ड्स पार्ट-1, पृष्ठ क्र. 130-131; उद्धृत तुलसीराम : भारत में अंग्रेजी, क्या खोया क्या पाया था, पृष्ठ क्र. 67)

पूरे घटनाक्रम के परिणामों के संबंध में मुरली मनोहर जोशी का कथन है कि, “ब्रिटिश पार्लियामेंट के जिस चार्टर के आधार पर विश्वविद्यालय और महाविद्यालय बनवाए गए, उनकी पाठ्यचर्चा में स्पष्ट लिखा है कि गणित, रसायन विज्ञान, भौतिकी, दर्शन शास्त्र आदि विषय अंग्रेजी माध्यम से पढ़ाए जाएँगे। इन विषयों के पाठ्यक्रम में यूरोपियन गणितज्ञों, वैज्ञानिकों, दर्शनशास्त्रियों आदि को ही रखा जाएगा। भारतीय गणितज्ञों, वैज्ञानिकों और दर्शनशास्त्रियों का उसमें कहीं जिक्र तक नहीं होगा। ऐसा करके वे हमें अपनी मूलधारा से अलग करना चाहते थे यानी भारतीयता से काट देना चाहते थे।” (मुरली मनोहर जोशी : ‘भारत में शिक्षा की संस्कृति और

संस्कृति की शिक्षा’ 16 दिसंबर, 2006 को व्याख्यान, भोपाल उद्धृत पुरवैया जून-जुलाई 2007, पृष्ठ संख्या 9)

शिक्षा के संबंध में अंग्रेजी सरकार द्वारा लिए गए निर्णय का परिणाम यह हुआ कि जिस संस्कृत भाषा में उपलब्ध ग्रंथों को 1814 में ‘एक्सलेंट ट्रीटीज’ कहा गया, वे सब ग्रंथ व्यर्थ हो गए। आगे चलकर 1854 के बुड्ज डिस्पैच में कहा गया कि ‘जनता के सारे वर्गों में यूरोपियन विषयों की शिक्षा का ज्ञान कराया जाए तथा भारतीयों को यूरोपियन ग्रंथों से परिचित कराया जाए।’ भारतीय भाषाओं की स्थिति आश्चर्यजनक रूप से विचित्र हो गई। यहाँ तक कि संस्कृत साहित्य और भाषा में पी-एच.डी. की उपाधि प्राप्त करने के लिए लिखे जाने वाले शोध प्रबंध अंग्रेजी भाषा में लिखे जाने लगे और उनके आधार पर उपाधियाँ दी जाने लगीं। यह तो ऐसा ही हुआ जैसे अंग्रेजी साहित्य और भाषा में पी-एच.डी. का शोध हिंदी या संस्कृत भाषा में लिखा जाए। भारतीय शिक्षा में भारतीय भाषाओं की विडंबना देखिए, विषय संस्कृत साहित्य एवं भाषा, परंतु शोध का माध्यम अंग्रेजी भाषा। संस्कृत विषय में एम.ए. की उपाधि अंग्रेजी माध्यम से प्राप्त की जा सकती थी।

कालांतर में इसका परिणाम यह हुआ कि संपूर्ण शिक्षा पश्चिम केंद्रित हो गई, महाविद्यालयों और विश्वविद्यालयों में अध्ययनरत छात्रों के मस्तिष्क में यह धारणा जम गई कि जो भी वैज्ञानिक और दार्शनिक ज्ञान है, वह यूरोप में ही विकसित हुआ, भारत में ज्ञान-विज्ञान की कोई परंपरा रही ही नहीं। शिक्षा का माध्यम अंग्रेजी होने का यह परिणाम हुआ कि छात्रों ने उन पुस्तकों को पढ़ा जो अंग्रेजों ने अंग्रेजी में लिखी थीं। भारतीय विचारक और उनकी पुस्तकों का अध्ययन होता ही नहीं था। परिणामतः सामाजिक ज्ञान, इतिहास, भूगोल सभी विषयों में जो अंग्रेजों ने लिखा, हमने उसे ही पढ़ा और उसे ही सत्य मान लिया। हमारी शिक्षा की भावभूमि ही बदल गई। हमारा इतिहास बोध भोथरा हो गया। हमारा इतिहास वह हो गया जो जेम्समिल ने लिखा। हम अपनी संस्कृति, सभ्यता, भूगोल, इतिहास और समाज को अंग्रेजी आँखों से देखने लगे और उनके लिखे पर विश्वास करने लगे।

हमारी वैज्ञानिक उपलब्धियाँ, इंजीनियरिंग का ज्ञान और तत्व चिंतन सब अध्ययन क्षेत्र से बाहर हो गए। हमारा अकादमिक वह हो गया जो अंग्रेजों ने या अंग्रेजों से प्रभावित विद्वानों ने हमें समझाया। हम अपने विद्वानों के कथन पर अविश्वास करने लगे। हमारा गौरव, हमारा आत्म विश्वास, आत्म सम्मान, हमारा इतिहास, हमारे इतिहास पुरुषों का पौरुष तथा उनकी महानता सभी कुछ शिक्षा से गायब हो गए।

इस प्रकार पाठ्यपुस्तकों और पाठ्यक्रम से भारतीय ज्ञान परंपरा और भारतीय भाषाओं को अलग करने का जो सुनियोजित प्रयास 1792 में चार्ल्स ग्रांट ने प्रारंभ किया, उसने 1834 में अपनी पूर्णता को प्राप्त किया। दशाब्दियों तक भारतीय मानस को उसकी वैचारिक और सांस्कृतिक चेतना से वंचित करने में यह प्रयास सफल रहा। ●●●



# तोमोए में पठन-पाठन

रेल के पुराने डिब्बों में चलते स्कूल में जाना तो अपने आप में असामान्य बात थी ही, कक्षाओं में बैठने की व्यवस्था भी अनूठी लगी। पिछले स्कूल में बच्चों के बैठने के स्थान निश्चित थे, पर यहाँ बच्चे जहाँ भी उनकी इच्छा हो, बैठ सकते थे।

काफी सोचने और ध्यान से सब कुछ देखने के बाद तोतो-चान ने तय किया कि वह उस लड़की के पास बैठेगी जो तुरंत उसके बाद डिब्बे में चढ़ी थी। वह इसलिए कि उस लड़की ने ऐसी फ्रॉक पहन रखी थी, जिस पर लंबे कानों वाला एक खरगोश कढ़ा हुआ था।

लेकिन स्कूल की जो सबसे अनूठी बात थी, वे थे वहाँ के पाठ। दूसरे स्कूलों में हर विषय की घंटियाँ निश्चित होती थीं। जैसे पहली घंटी अगर जापानी की हो, तो उसमें



## तोमोको कुरोयानागी

जापान के टोक्यो शहर में जन्मी तोतो-चान अब तोमोको कुरोयानागी के नाम से मशहूर हैं। वे जापानी टेलीविजन में जाना-माना नाम हैं। वे यूनीसेफ की सद्भावना दूत भी रही हैं। उनकी पुस्तक 'तोतो-चान' एक लोकप्रिय पुस्तक है जो कि बचपन की यादों पर आधारित है। यह जापान के इतिहास में 'बेस्टसेलर' पुस्तक है जिसका अनुवाद राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत ने कराया है।

जापानी ही पढ़नी होती थी। फिर दूसरी घंटी अगर गणित की हो तो सब बच्चों को वही करना होता था, पर यहाँ सब कुछ अलग था। पहली घंटी शुरू होते ही दिन भर में जिन विषयों को पढ़ाना होता था या जिन प्रश्नों के उत्तर लिखने होते थे, शिक्षिका उनकी सूची बना देती थी और तब बच्चों से कहती, "अब तुम्हें जहाँ से शुरू करना हो करो।"

इसलिए जापानी या गणित या किसी दूसरे विषय से शुरू किया जा सकता था। जिसे लेख लिखना पसंद हो, वह लेख लिखता था, जबकि ठीक उसके पीछे बैठा बच्चा जिसकी रसायन में रुचि हो किसी फ्लास्क में, लैप की लौ पर कुछ उबालता मिल सकता था। इसलिए किसी भी कक्षा

में कभी भी छोटा-मोटा कोई धमाका हो सकता था।

पढ़ने-पढ़ाने की इस पद्धति से शिक्षक हर छात्र पर नजर रख सकते थे, उनकी रुचियों, उनके विचारों, उनके चरित्र से बखूबी परिचित हो सकते थे। अपने छात्र-छात्राओं को गहराई से पहचानने का यह आदर्श तरीका था।

विद्यार्थी अपने चहेते विषय से दिन शुरू कर सकते थे और जो विषय अच्छे न लगते हों, उनसे जूझने के लिए उनके पास सारा दिन था। यानी वे अपना काम किसी-न-किसी तरह पूरा कर ही डालते थे। इस प्रकार पढ़ना तो वहाँ अधिकतर अपने आप पड़ता था, पर जब कभी विद्यार्थी चाहते

तो वे शिक्षकों से सलाह ले सकते थे। शिक्षक भी कभी-कभी उनके पास स्वयं चले जाते। किसी भी समस्या को धैर्य से तब तक समझाते जब तक वह बच्चों को पूरी तरह समझ न आ जाती। तब वे बच्चों को अपने आप करने के लिए कुछ अभ्यास भी देते। यह थी सार्थक पढ़ाई। और इसका मतलब होता था कि जब शिक्षक कुछ समझाए तो किसी भी कक्षा में कोई भी बच्चा खोया-सा न बैठा रहे।

“ शिक्षिका ब्लैक-बोर्ड के पास एक डेस्क पर बैठी एक बच्चे को कुछ समझा रही थी। तोत्तो-चान ने इधर-उधर ताकना बंद किया, अपनी हथेलियों पर टुडूडी रखी और जाते हुए लड़के की पीठ पर निगाहें जमा दीं। लड़का पैर घसीटकर जब चल रहा था तो उसका पूरा शरीर डगमगाता लगता था। ”

पहली कक्षा के बच्चे उस स्तर तक नहीं पहुँचे थे कि उन्हें स्वतंत्र पढ़ाई करने दी जाए, लेकिन उन्हें भी किसी भी विषय से प्रारंभ करने की छूट थी।

कुछ बच्चे वर्णमाला लिखने लगे, कुछ चित्र बनाने लगे, कुछ किताबें पढ़ने लगे और कुछ कक्षा में ही व्यायाम तक करने लगे। तोत्तो-चान के पास जो लड़की बैठी थी, उसे पूरी वर्णमाला आती थी,



वह उसे अपनी कॉपी में लिख रही थी। यह सब इतना बड़ा अजूबा था कि तोत्तो-चान घबराहट में समझ ही नहीं पा रही थी कि वह क्या करे।

ठीक उसी समय उसके पीछे बैठा हुआ लड़का उठा और शिक्षिका से कुछ पूछने ब्लैक-बोर्ड की ओर बढ़ने लगा। शिक्षिका ब्लैक-बोर्ड के पास एक डेस्क पर बैठी एक बच्चे को कुछ समझा रही थी। तोत्तो-चान ने इधर-उधर ताकना बंद किया, अपनी हथेलियों पर टुडूडी रखी और जाते हुए लड़के की पीठ पर निगाहें जमा दीं। लड़का पैर घसीटकर जब चल रहा था तो उसका पूरा शरीर डगमगाता लगता था। पहले तो तोत्तो-चान ने सोचा कि वह जान-बूझकर ऐसा कर रहा है, पर थोड़ी ही देर में वह समझ गई कि लड़का ठीक से नहीं चल पाता है।

तोत्तो-चान उसे तब तक घूरती रही जब तक वह अपनी जगह पर लौट न आया। उनकी आँखें मिलीं। लड़का मुस्कराया। तोत्तो-चान भी हड़बड़ा कर मुस्कराई। जब वह अपनी जगह पर बैठा तो उसे बैठने में भी काफी समय लगा। वह मुड़ी और उसने पूछा, “तुम ऐसे क्यों चलते हो?”

उसने धीमी और कोमल आवाज में उत्तर दिया, “मुझे पोलियो हुआ था।”



“पोलियो?” तोत्तो-चान ने दोहराया। उसने यह शब्द पहले सुना ही नहीं था।

“हाँ, पोलियो,” वह फुसफुसाया, “सिर्फ मेरी टाँग नहीं, हाथ भी खराब है।” उसने अपना बायाँ हाथ आगे फैलाया। तोत्तो-चान ने देखा कि उसकी लंबी-लंबी उंगलियाँ मुड़ी हुई और एक-दूसरे से चिपकी हुई लगती थीं।

“क्या इसे वे लोग ठीक नहीं कर सकते?” तोत्तो-चान ने चिंतित होकर पूछा। उसने उत्तर नहीं दिया। अब तोत्तो-चान को अपनी उत्सुकता पर शर्म आने लगी। उसे लगा, उसे यह नहीं पूछना चाहिए था। तब उस लड़के ने उमंग से भरकर कहा, “मेरा नाम यासुकी यामामोतो है। तुम्हारा क्या है?”

लड़के की प्रफुल्ल आवाज सुन वह खुश हो गई और बोली, “मैं हूँ तोत्तो-चान।”

और इस तरह यासुकी यामामोतो और तोत्तो-चान दोस्त बने। धूप के कारण डिब्बे में काफी गर्मी हो गई थी। तभी किसी ने खिड़की खोल दी। वसंत की ताजी हवा डिब्बे में घुस आई और बच्चों के बालों को बेतरतीबी से बिखेर दिया।

यों शुरू हुआ तोमोए में तोत्तो-चान का पहला दिन।

(तेत्सुको कुरोयानागी द्वारा संपादित, पूर्वा याज्ञिक कुशवाहा द्वारा अनूदित व राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत से प्रकाशित ‘तोत्तो-चान’ पुस्तक से साभार)



# विकलांग बच्चों की शिक्षा

किसी भी समाज की उन्नति के लिए आवश्यक है कि उसका प्रत्येक नागरिक शिक्षित एवं रोजगार युक्त हो। व्यक्ति समाज से भिन्न नहीं है। व्यक्ति के विकास से ही समाज का विकास संभव है। समाज के दलित, वंचित, गरीब एवं विकलांग व्यक्ति भी शिक्षा के उतने ही अधिकारी हैं जितने कि धनी, स्वस्थ एवं सवर्ण व्यक्ति। पुरातनपंथी, सामंतवादी एवं ब्राह्मणवादी मानसिकता के तहत आज किसी भी व्यक्ति के संबंध में यह टिप्पणी करके पिंड नहीं छुड़ाया जा सकता कि वह अपने कर्मों का फल भोग रहा है, समाज क्या करे? समाज और राष्ट्र का दायित्व है अपने सभी नागरिकों को शिक्षित करना

और उनकी क्षमताओं-विशिष्टताओं के अनुरूप उन्हें रोजगार मुहैया कराना ताकि प्रत्येक व्यक्ति की योग्यताओं का समुचित उपयोग देश के विकास में हो सके। “भोजन, वस्त्र एवं आवास की भौति शिक्षा भी अनिवार्य आवश्यकता है, जिसे प्रत्येक व्यक्ति को बिना किसी भेदभाव के ग्रहण करने का अधिकार है। शिक्षा का उद्देश्य व्यक्ति को उसकी क्षमता के अनुरूप अधिकाधिक समाजोपयोगी बनाना है। यदि विकलांग वर्ग को शिक्षा के इस काम से वंचित रखा जाता है तो प्रजातंत्र के लिए यह घोर दुखद स्थिति है...।



विकलांगता की चपेट में आ जाते हैं, जिससे उन्हें बचाया जा सकता था। उनकी शिक्षा को लेकर भी अभिभावकों में प्रायः उदासीनता का भाव देखने को मिलता है। हालाँकि पहले की तुलना में अब काफी जागरूकता बढ़ी है। विकलांग बच्चों की स्कूली भर्ती को लेकर पर्याप्त मतभेद बने हुए हैं। विभिन्न आँकड़ों के अनुसार, चार प्रतिशत से लेकर 67.5 प्रतिशत बच्चे विद्यालयों में शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं, परंतु औपचारिक शिक्षा से बहुत बड़ी संख्या में अभी भी विकलांग बच्चे वंचित हैं। राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण संगठन (एन.एस.एस.ओ.) के आँकड़े बताते हैं कि विकलांग बच्चे केवल 45 प्रतिशत ही साक्षर हैं, जबकि कुल जनसंख्या में सामान्य बच्चों की साक्षरता का प्रतिशत 65 प्रतिशत है। विश्व बैंक (2007) की मानें तो केवल चार प्रतिशत विकलांग बच्चे ही आठ वर्ष से अधिक की स्कूली शिक्षा जारी रख पाते हैं।



**डॉ. संध्या कुमारी**

जन्म : 1 जनवरी, 1976

शिक्षा : एम.ए., एम.फिल., पी-एच.डी. (हिंदी), जे.एन.यू., नई दिल्ली।

संप्रति : सोसाइटी फॉर डिसेबिलिटी एंड रिहैबिलिटेशन स्टडीज की मानद अध्यक्ष, विकलांगता समीक्षा (हिंदी जर्नल) की सह संपादक।

लेखन : जीवन संग्राम के योद्धा (सं), एन.बी.टी., नई दिल्ली; हौसले की उड़ान (सं), मोनिका प्रकाशन, जयपुर। विविध पत्रिकाओं में शोध, आलेख प्रकाशित।

संपर्क : मोबाइल – 9818799240

ईमेल – sandhyajnu76@gmail.com

1. शिक्षा व्यक्तियों में संपन्नता, कल्याण एवं सुरक्षा सुनिश्चित करती है। विकलांगता चाहे प्रकृतिजन्य हो या मानव निर्मित, यह एक बेहद गंभीर एवं चुनौतीपूर्ण समस्या है। इसकी भयावहता से इनकार नहीं किया जा सकता। सन् 2001 की जनगणना के अनुसार, देश में 2.19 करोड़ विकलांग लोग हैं जो कुल जनसंख्या का 2.13 प्रतिशत है।
2. विकलांगों की बहुत बड़ी आबादी गाँवों में निवास करती है। इनका गरीबी, अशिक्षा और अंधविश्वास से गहरा अंतर्संबंध होता है। अंधविश्वास एवं गरीबी के कारण कई बार बच्चे

3. विकलांग बच्चों की शिक्षा को लेकर समाज में एक मतभेद बना हुआ है। एक विचारधारा यह मानती है कि विकलांग बच्चों के लिए विशेष स्कूलों की व्यवस्था होनी चाहिए। उनका तर्क है कि ये बच्चे एक तरफ विकलांगता की चुनौतियों को झेलते हुए संघर्ष करते हैं, दूसरी तरफ उन्हें सामान्य विद्यालय के तथाकथित सकलांग सहपाठियों, शिक्षकों एवं कर्मचारियों की उपेक्षा और अपमान का दोहरा दंश झेलना पड़ता है। विशेष विद्यालयों में उनके साथ कोई भेदभाव नहीं होता और अपनी ही तरह के बच्चों के साथ वे अधिक आराम एवं सुकून महसूस करते हैं। विद्वानों का दूसरा वर्ग समावेशी शिक्षा का पक्षधर है। सामान्यतः समावेशी शिक्षा से तात्पर्य विकलांग बच्चों से लगाया जाता है, जबकि वास्तविकता ऐसी नहीं है।

समावेशी शिक्षा का मतलब है ऐसी शिक्षा व्यवस्था जिसमें विकलांग, सामान्य, अति सामान्य एवं अति तीव्र या कुशाग्र बुद्धि के बालक एक साथ शिक्षा ग्रहण करते हों। “शिक्षा-शास्त्रियों, विचारकों, समाज-सुधारकों एवं विकलांग शिक्षा के क्षेत्र में कार्य करने वाले व्यक्तियों के समक्ष यह विचार अत्यंत प्रबल है कि विकलांगों के लिए

“ समावेशी शिक्षा एक ऐसी शिक्षा प्रणाली है जिसके द्वारा समाज के सभी वर्गों के विभिन्न प्रकार की विशेषताएँ रखने वाले बालकों को बिना किसी पक्षपात किए शिक्षा प्रदान की जाती है। शैक्षणिक समावेशन में प्रयोग की जाने वाली विधियाँ अन्य शिक्षण विधियों से भिन्न होती हैं। इसमें छात्रों के मानसिक स्तर पर विशेष ध्यान दिया जाता है। ”

विशेष शिक्षा की व्यवस्था हेतु अलग से विद्यालयों की आवश्यकता नहीं है, साधारण विद्यालय में ही विकलांग हेतु विशेष व्यवस्था कर देनी चाहिए।”

4. इनकी मान्यता है कि विकलांग, सामान्य, अति सामान्य एवं अति प्रतिभाशाली बच्चों को एक ही विद्यालय में बिना किसी भेदभाव के पढ़ने की सुविधा प्रदान की जाए। जैसा कि पहले कहा गया है समावेशी शिक्षा एक ऐसी शिक्षा प्रणाली है जिसके द्वारा समाज के सभी वर्गों के विभिन्न प्रकार की विशेषताएँ रखने वाले बालकों को बिना किसी पक्षपात किए शिक्षा प्रदान की जाती है। शैक्षणिक समावेशन में प्रयोग की जाने वाली विधियाँ अन्य शिक्षण विधियों से भिन्न होती हैं। इसमें छात्रों के मानसिक स्तर पर विशेष ध्यान दिया जाता है। सामान्य रूप से कार्य न कर पाने वाले विद्यार्थियों को विशेष रूप से शिक्षा प्रदान की जाती है। उनकी कमियों का पता लगाकर एवं उन्हें सहायक उपकरण उपलब्ध कराकर उनकी परेशानियाँ दूर की जाती हैं।

समावेशी शिक्षा से बालकों में भेदभाव नहीं रहता है। उनमें सहयोगात्मक रवैया विकसित होता है। समाज के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण आता है। समाज की मुख्यधारा से उनका जुड़ाव होता है और आत्मनिर्भर बनकर समाज के विकास में योगदान करने से उनमें उत्तरदायित्व की भावना आती है। उनमें संवेदनशीलता का विकास होता है। ‘विकलांगता अधिकार अधिनियम, 1995’ के अनुसार सरकार की जिम्मेदारी है—

- विकलांग बच्चों को 18 वर्ष की आयु तक निःशुल्क स्कूली शिक्षा प्राप्त करने का अवसर प्रदान करे।
- विकलांग बच्चों के लिए सहायक उपकरण एवं विशेष शिक्षण सामग्रियों के विकास के लिए सार्वजनिक तथा गैर-सरकारी एजेंसियों को अनुसंधान के लिए प्रेरित करे।
- विशेष एवं सामान्य विद्यालयों में विकलांग बच्चों के शिक्षण के लिए आवश्यक जनशक्ति तैयार करने हेतु शिक्षकों को प्रशिक्षित किया जाए।
- सभी सार्वजनिक शिक्षण संस्थाओं एवं सरकारी सहायता प्राप्त संस्थाओं में 18 वर्ष के आयु के विकलांगजन के लिए कम-से-कम तीन प्रतिशत सीटें आरक्षित रखे।
- विकलांग बच्चों के लिए व्यापक शिक्षा योजना तैयार करनी चाहिए जिसमें परिवहन, वित्तीय प्रोत्साहन, बाधारहित वातावरण, पुस्तकें, पोशाकें, शिक्षण सामग्री आदि शामिल हैं।
- विकलांग बच्चों के लिए परीक्षा प्रणाली में आवश्यकतानुसार समायोजन एवं पाठ्यचर्या का अनुकूलन करना चाहिए।

5. सरकार के द्वारा समय-समय पर अनेक योजनाएँ चलाई जाती रही हैं जिससे कि अमीर-गरीब, दलित-सवर्ण, विकलांग-सकलांग, कोई भी व्यक्ति शिक्षा से वंचित न रह पाए। गरीब एवं मजदूर अभिभावक अपने बच्चों से बाल-मजदूरी न करवाकर उन्हें स्कूल भेजें, इस हेतु उन्हें प्रोत्साहित करने के लिए ‘शिक्षा के अधिकार अधिनियम, 2009’ के तहत निःशुल्क शिक्षा के साथ ही मध्याह्न भोजन, मुफ्त किताबें, पोशाकें एवं छात्रावासों का प्रबंध किया गया। इसके बावजूद विकलांग बच्चों की विद्यालयी शिक्षा निर्बाध रूप से नहीं चल पाती। आँकड़े बताते हैं कि अनुसूचित जातियों एवं अनुसूचित जनजातियों के बच्चों की तुलना में विकलांग बच्चों की पढ़ाई बीच में छोड़ने की संभावना पाँच गुना अधिक होती है। आखिर इसका कारण क्या है? नीतियाँ बनती हैं, पर उनके कार्यान्वयन में क्या कमी रह जाती है कि विकलांग बच्चों को

उसका पूरा लाभ नहीं मिल पाता? नीतियों एवं उनके कार्यान्वयन के इस फॉक को समझने की जरूरत है। इन योजनाओं का व्यापक प्रचार-प्रसार का न होना, अभिभावकों की उदासीनता, सरकारी-तंत्र की खामियाँ आदि सबका मूल्यांकन होना चाहिए। अभिभावक भी अपने सक्षम बच्चों को शिक्षित करने के लिए हर परेशानियों का सामना करते हैं, परंतु अपने विकलांग बच्चे के लिए पूरी तरह से सरकार या गैर-सरकारी अनुदानों की बाट जोहते हैं।

विकलांग बच्चों के सामाजिक एकीकरण एवं समायोजन के लिए सर्वाधिक उपयुक्त है समावेशी शिक्षा प्रणाली, परंतु इसके लिए विद्यालयों में पर्याप्त सुविधाओं का होना निहायत जरूरी है। विकलांग बच्चों के साथ व्यवहार करने, उन्हें समझने की योग्यता विकसित करने के लिए प्रत्येक शिक्षक का प्रशिक्षण जरूरी है। प्रशिक्षण के दौरान उन्हें विशेष आवश्यकता



वाले बच्चों से तादात्म्य स्थापित करने का प्रशिक्षण मिलना चाहिए। दृष्टिबाधित एवं श्रवण तथा वाक् बाधितार्थ छात्रों के लिए सहायक आवश्यक उपकरणों की उपलब्धता होनी चाहिए। रिकॉर्डिंग की सुविधा आवश्यक होने के साथ ही लकड़ी या प्लास्टिक से बने अक्षर से उन्हें अक्षर की बनावट समझाई जा सकती है। दृष्टिबाधितों के लिए नियमित रूप से ब्रेल की क्लासेज होनी चाहिए। ब्रेल पर उँगलियों के स्पर्श से उन्हें शुद्ध-शुद्ध लिखने का अभ्यास होगा। उच्चारण की शुद्धता पर भी विशेष ध्यान देने की जरूरत होती है। इसमें परिवार का सहयोग भी महत्वपूर्ण होता है। विद्यार्थियों का समूह बनाकर उन्हें अपनी कक्षा के विकलांग बच्चों की सहायता के लिए प्रेरित करना चाहिए। यह सहायता ऐसी नहीं होनी चाहिए कि सहायता लेने और देने वालों को थोपा हुआ या बोझ-सा लगे। न सक्षम बच्चे इसे दया या उपकार मानें, न ही विकलांग बालक सहायता पाकर कुंठित महसूस करें। विकलांग बच्चों को भी आत्मनिर्भरता का पाठ पढ़ाया जाए जिससे वे स्वयं को दूसरों पर पूरी तरह आश्रित न मानने लें। समूह के द्वारा ही विकलांग बच्चों का रिजीजन करवाया जाए। उन्हें नियमित रूप से कंप्यूटर की भी शिक्षा दी जाए। कंप्यूटर के स्पीच सॉफ्टवेयर का उपयोग किया जाए। स्वस्थ, संवेदनशील एवं जागरूक सामाजिक परिवेश का निर्माण हो। विकलांग जीवन से संबंधित प्रेरक कहानियाँ एवं जीवनियाँ पाठ्यक्रम में होने से सक्षम बच्चों में भी सकारात्मकता आएगी। प्रेरणाप्रद फिल्में भी दिखाई जानी चाहिए।

सबसे महत्वपूर्ण है बाधारहित वातावरण का निर्माण। विद्यालय में व्हीलचेयर के साथ आसानी से प्रवेश की गुंजाइश होनी चाहिए। कोई विद्यार्थी, शिक्षक या कर्मचारी अल्पकालीन विकलांगता से भी ग्रसित हो सकता है। छोटे-छोटे परिवर्तन से किसी भवन को बाधारहित बनाया जा सकता है। गाँवों में जहाँ कच्चे और गड़देयुक्त सड़कें हैं, उनकी हालत बरसात में और भी बदतर हो जाती है। ऐसी परिस्थिति में विकलांग विद्यार्थी यदि विद्यालय जाने में असमर्थ है तो उसके लिए छात्रावास की सुविधा मुहैया करानी चाहिए। दूर-दराज के विकलांग विद्यार्थी, जिनके लिए प्रतिदिन स्कूल आना-जाना संभव नहीं है, छात्रावास की व्यवस्था होनी चाहिए।

शिक्षक विकलांग विद्यार्थियों के प्रति संवेदनशील हो, दयावान नहीं। विकलांग बालक को यह न लगे कि विकलांग होने के कारण उस पर दया की जा रही है और विशेष छूट मिल रही है। 'अध्यापक को विकलांगों में यह विश्वास पैदा करना है कि वे औसत छात्रों के साथ उतना ही सजीव रहकर शिक्षण प्राप्त कर सकते हैं।'

6. ये बहुत महीन रेखाएँ हैं जिनका कोई लिखित नमूना या प्रारूप नहीं हो सकता, परिस्थितियों के अनुसार इनका स्वरूप निर्धारित एवं परिवर्तित होता है। बच्चों के व्यवहार का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण होना चाहिए। उनके मन में अदृश्य रूप से बैठी हुई निराशा, हताशा, कुंठा, भय, क्षोभ, ग्लानि आदि को दूर कर उनमें अदम्य जिजीविषा, आत्मविश्वास एवं दृढ़ इच्छाशक्ति की भावना का प्रादुर्भाव करना चाहिए। विकलांग बच्चों को विद्यालय की गतिविधियों में बिना भेदभाव किए शामिल करना चाहिए। 'सामाजिक, सांस्कृतिक एवं पारिवारिक आयोजनों में उसे सम्मिलित न होने पर असंतोष होता है। इस अवस्था में भग्नाशा के कारण बालक शिक्षण की ओर प्रवृत्त नहीं हो पाता, कई बार वे पलायन वृत्ति या आपराधिक प्रवृत्ति की ओर अग्रसर हो जाते हैं।'

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि विकलांग बच्चों को सामान्य स्कूलों में ही पढ़ना सबसे सही है। इसके लिए सभी विद्यालयों में आवश्यक सुविधाएँ जब तक सरकार उपलब्ध नहीं कराएगी, नीतियाँ धरी-की-धरी रह जाएँगी। समय-समय पर विद्यालयों की कार्यप्रणाली और उसकी खामियों के मूल्यांकन की आवश्यकता है, इसके माध्यम से ही त्रुटियों को दूर किया जा सकता है। परिवार और समाज का सहयोगात्मक एवं स्वस्थ नजरिया महत्वपूर्ण है, सबका साथ और सबका विकास तभी संभव है।





# शिक्षा और शिक्षाकीय दायित्व

सामान्यतः सारी दुनिया में यह माना जाता है कि कुछ भी अगर परिवर्तन आना है, विकास होना है तो उसका माध्यम शिक्षा है। कोई भी कला हो, कोई भी व्यवसाय हो, कोई भी विषय हो, उस संदर्भ में अगर आगे बढ़ना है तो पहला जो विषय आता है, वह शिक्षा का है और इसीलिए शिक्षा का प्रचार-प्रसार होना चाहिए। पूरी दुनिया में इसका आग्रह भी रहता है, प्रयत्न भी चलता है। भारत की स्थिति का विचार करें, तो आजादी जब मिली उस समय भारत में कुल 17 विश्वविद्यालय थे। आज 400 से ऊपर विश्वविद्यालय हो गए हैं। 21,000 से ऊपर

कॉलेज हैं। 2,000 से अधिक तकनीकी संस्थान (आई.आई.टी.-आई.आई.एम.), अनेकों-अनेक रिसर्च सेंटर्स और इसके नीचे उच्चतर, माध्यमिक और प्राथमिक विद्यालय तो लाखों की संख्या में हैं। स्पष्ट है कि शिक्षा

का तो विस्तार हुआ है हमारे यहाँ, वैसे ही सारी दुनिया में हुआ है। जिन्हें विकसित देश कहते हैं, वहाँ पर भी। अंतिम व्यक्ति तक शिक्षा जानी चाहिए, उसके प्रयत्न हुए और वे आगे बढ़े। वर्तमान में भी सर्वशिक्षा अभियान, मिड-डे मील आदि अनेक माध्यमों से शिक्षा को लोकप्रिय बनाने का प्रयत्न अपने देश में भी चल रहा है। शिक्षा का व्याप बढ़ता जा रहा है। लेकिन सारी दुनिया में, चिंतकों के सामने दूसरा प्रश्न भी खड़ा हो रहा है कि ज्यों-ज्यों शिक्षा बढ़ रही है त्यों-त्यों समस्याएँ भी बढ़ रही हैं। अमेरिका को विकसित देश कहते हैं, वह विकसित है भी, लेकिन वहाँ गन कल्चर भी उतनी ही तेजी से बढ़ रही है। परिस्थिति ऐसी है कि 12 साल की लड़कियाँ गर्भवती हो रही हैं, 14 साल का लड़का अपने साथी को गोली मार रहा है और 16 साल का लड़का एचआईवी पॉजिटिव टेस्ट करा रहा है। परिवारों में सामंजस्य नहीं हो रहा है, फलतः परिवार टूट रहे हैं। समाज में तनाव है, व्यक्तिगत जीवन में अवसाद है। अपने देश में भी विचार करेंगे



तो शिक्षा का ज्यों-ज्यों विस्तार हो रहा है, त्यों-त्यों भ्रष्टाचार का भी विस्तार हो रहा है और भ्रष्टाचार करने वाला कोई अनजान आदमी है, ऐसा नहीं है। जो जानकार है, वह ही है और जो जितना अधिक जानता है, वह उतना ही अधिक कुशलता के साथ भ्रष्टाचार करता है। एक ढ़ंड आ रहा है। मुद्दा यह है कि आज शिक्षा का उद्देश्य तो अच्छा है। शिक्षा में नर से नारायण बनाने वाली अपनी परंपरा की बातें सब ठीक हैं, पर प्रश्न है, ऐसा हो क्यों रहा है कि आधुनिक शिक्षा प्राप्त व्यक्ति का गाँव से, परिवार से और खेती से प्रेम समाप्त हो रहा है, शहरी शिक्षित व्यक्तियों का अपनी परंपरा से प्रेम समाप्त हो रहा है। अपने मूल्य, अपनी विरासत सभी से हम विमुख हो रहे हैं। यह प्रश्न अब सारी दुनिया के सामने है कि ऐसा क्यों है? 21वीं सदी में शिक्षा कैसी हो? इस प्रश्न पर विचार करने के लिए यूनेस्को ने एक समिति का गठन किया जिसके अध्यक्ष डेलर्स थे। समिति ने पूर्ण विचारोपरांत अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की



**सुरेश सोनी**

श्री सुरेश सोनी ने विज्ञान एवं दर्शन सम्मत विषयों का गहन अध्ययन किया है। यद्यपि वे राजनीति शास्त्र के छात्र रहे, लेकिन विज्ञान उनका प्रिय क्षेत्र है। उनकी चर्चित पुस्तकें हैं—‘भारत-अतीत वर्तमान और भविष्य’, ‘हमारी सांस्कृतिक विचारधारा के मूल स्रोत’, ‘भारत में विज्ञान की उज्ज्वल परंपरा’ आदि। उन्होंने विद्युत शास्त्र, धातु विज्ञान, विमान शास्त्र, वस्त्र उद्योग, गणित शास्त्र, कालगणना, खगोल विज्ञान, स्थापत्य शास्त्र, रसायन विज्ञान, वनस्पति विज्ञान एवं प्राणि विज्ञान आदि-आदि में भारतीय ज्ञान की उज्ज्वल परंपरा को सहज व सरल भाषा में बड़ी सिद्धता से स्थापित किया है। वर्तमान में राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के सह सकार्यवाह हैं।

जिसका शीर्षक था 'लर्निंग ट्रेजर विद इन' अर्थात् खजाना बाहर नहीं अंदर है। यह रिपोर्ट 1996 में प्रकाशित हुई थी। इस रिपोर्ट में जहाँ एक तरफ जो विसंगतियाँ हैं, उसका विवेचन किया, तो दूसरी ओर 21वीं शताब्दी के अंदर मानव जाति के सामने कौन-कौन सी समस्याएँ आने वाली हैं, जिनका उत्तर शिक्षा को देना पड़ेगा, इसका भी विवेचन किया गया।

“ आजकल एक बड़ी विचित्र धारणा हो गई है कि यदि आपको मॉडर्न बनना है तो परंपराओं को गाली दो। मुख्यतः यह सोच ही गड़बड़ है। हमारे यहाँ कहा गया है कि भई विकास होना चाहिए। विकास होना चाहिए तो क्या होना चाहिए? आगे बढ़ना चाहिए। हम सब आगे कैसे बढ़ते हैं, हम सब मनुष्य हैं, जब सड़क पर चलते हैं तो एक पैर अपना जमीन पर रहता है और एक पैर ऊपर उठता है, आगे रखा पैर जमीन पर टिका रहता है, दूसरा पैर उठाते हैं फिर उसको आगे रखते हैं। इसी ढंग से बढ़ते हैं। कोई कहे कि क्या ये हजारों साल पुरानी दकियानूसी बात है। मैं दूसरे ढंग से चलूँगा। बिना जमीन पर पैर रखे दूसरा पैर भी उठाऊँगा। जो उठा सकता है, कोई ऐतराज नहीं है, लेकिन होगा क्या? मैं कहता हूँ कि यह जमीन पर रखा हुआ पैर परंपरा है। जो पैर आगे रख रहे हो, वह आधुनिकता है। परंपरा को छोड़कर आप आधुनिकता में जाएँगे तो आपका अस्तित्व ही नहीं रहेगा।

रिपोर्ट में कहा गया है कि आपस में कुछ विरोधाभास है, अंतर्द्वंद्व है। इनके बीच में कैसे संतुलन करें, इसका समाधान शिक्षा को निकालना पड़ेगा। ऐसे सात प्रकार के अंतर्द्वंद्वों का डेलर्स रिपोर्ट वर्णन करती है। पहला है वैश्वीकरण बनाम स्थानीयता। आप जानते हैं कि आज स्थानीय पहचान समाप्त हो रही है। सब कुछ एक प्रतिमान के अंदर आ रहा है। एक तरफ स्थानीय विशेषताएँ हैं और दूसरी तरफ वैश्विक, इनके बीच का द्वंद्व है। दूसरा है सार्वभौम बनाम व्यक्तिगत। तीसरा है परंपरा बनाम आधुनिकता। आजकल एक बड़ी विचित्र धारणा हो गई है कि यदि आपको मॉडर्न बनना है तो परंपराओं को गाली दो। मुख्यतः यह सोच ही गड़बड़ है। हमारे यहाँ कहा गया है कि भई विकास होना चाहिए। विकास होना चाहिए तो क्या होना चाहिए? आगे बढ़ना चाहिए। हम सब आगे कैसे बढ़ते हैं, हम सब मनुष्य हैं, जब सड़क पर चलते हैं तो एक पैर अपना जमीन पर रहता है और एक पैर ऊपर उठता है, आगे रखा पैर जमीन पर टिका रहता है, दूसरा पैर उठाते हैं फिर उसको आगे रखते हैं। इसी ढंग से बढ़ते हैं। कोई कहे कि क्या ये हजारों साल पुरानी दकियानूसी बात है। मैं दूसरे ढंग से चलूँगा। बिना जमीन पर पैर रखे दूसरा पैर भी उठाऊँगा। जो उठा सकता है, कोई ऐतराज नहीं है, लेकिन होगा क्या? मैं कहता हूँ कि यह जमीन पर रखा हुआ पैर परंपरा है। जो पैर आगे रख रहे हो, वह आधुनिकता है। परंपरा को छोड़कर आप आधुनिकता में जाएँगे तो आपका अस्तित्व ही नहीं रहेगा। पर, आज हम इसका मार्ग खोज नहीं पा रहे हैं। हमारे यहाँ जो सनातन धर्म है, उसका अर्थ है चिर

पुरातन, नित्य नूतन, ये दोनों जोड़कर के चलना है। चौथा उन्होंने कहा है कि दूरगामी बनाम अल्पकालिक विचार (चित्रण)। कुछ समस्याएँ तात्कालिक हैं, लेकिन उनके समाधान दीर्घकालिक हैं, जिन पर प्रयत्न करना पड़ेगा। पाँचवाँ उन्होंने कहा है प्रतिस्पर्धा बनाम समानता। एक ओर समानता है और दूसरी तरफ प्रतिस्पर्धा है। यदि आरक्षण करते हैं तो लगता है कि व्यक्ति की योग्यता का असर जाता

है। लेकिन दूसरी तरफ समाज में अगर बहुत विषमता है तो उसको समान लाना है इसलिए आरक्षण भी चाहिए। यह अंतर्विरोध है। छठा उन्होंने कहा है कि ज्ञान की उपलब्धता बनाम विचार ग्राह्यता की क्षमता। जानकारियाँ बहुत मिल रही हैं लेकिन कौन-सी लेना, कौन-सी नहीं लेना, इसका विवेक चाहिए। इंटरनेट से बहुत कुछ मिलता है, लेकिन लेना क्या है? इसका हमें विचार करना है क्योंकि दोनों तरह की चीजें मिलती हैं और अंतिम एवं

सातवाँ उन्होंने कहा है कि आध्यात्मिकता बनाम भौतिकवाद भौतिकता और आध्यात्मिकता का द्वंद्व। और इस नाते से इन सबके बीच में कैसे मार्ग निकालें, यह विचारणीय प्रश्न है।

इसका मूल कारण क्या है, हमें इसका विवेचन करना पड़ेगा। यूनेस्को ने कहा कि इसका मूल कारण है व्यक्ति और विश्व के प्रति



खंडित दृष्टि। मनुष्य क्या है? विश्व क्या है? और उनका पारस्परिक संबंध क्या है? इसका आज पूर्णता में चिंतन का अभाव है। इन सारी समस्याओं की जड़ व्यक्ति के अंदर है। मनुष्य और समाज के रिश्ते क्या हैं? पड़ोसियों के साथ हमारा व्यवहार कैसा होना चाहिए, किन आधारों पर होना चाहिए? प्रकृति के प्रति हमारा क्या संबंध होना चाहिए? इस दृष्टि से एक वैकल्पिक दर्शन की जरूरत है। जब यह प्रश्न आता है तो स्वाभाविक रूप से लोग धीरे-धीरे भारतीय चिंतन

की ओर मुड़ते हैं। शिक्षा का लक्ष्य और दायित्व की जब चर्चा आती है तो मुझे लगता है कि सबसे पहले आज विचार करने की आवश्यकता है कि भारतीय शिक्षा क्या है? और दूसरा यह कि वर्तमान में जो समस्याएँ खड़ी हुई हैं, उनका कारण क्या है? और फिर, तीसरा है कि उसका उपाय क्या है? इसलिए संक्षेप में, मैं ये तीनों संदर्भों में कुछ बात रखना चाहूँगा।

“ अंतर्प्रकृति का नियमन कैसे करना है, इसका कहीं कोई प्रावधान नहीं है और इसलिए विवेकानंद ने कहा है कि अंतर्प्रकृति और बाह्य प्रकृति का नियमन करना है। इसको कैसे करना है। यह आप ज्ञान के माध्यम से करिए, कर्म से करिए, भक्ति के द्वारा करिए या मनसंयम, योग के द्वारा करिए, एक के द्वारा करिए या सबके द्वारा करिए। यह महत्वपूर्ण है, बाकी सारी बातें गौण हैं। ”

भारत में शिक्षा, कभी भी मात्र कोई रोजगार उत्पन्न करने वाली

या आप जिस कला-कौशल में आगे बढ़ना चाहते हैं, उसकी कुशलता प्राप्त कराने का साधन मात्र नहीं है। स्वामी विवेकानंद ने एक वाक्य में शिक्षा क्या है, उसका एक विवेचन किया है। मैं विवेकानंद को इसलिए उद्धृत कर रहा हूँ कि भारत का प्राचीन और विश्व का वर्तमान दोनों का सामयिक अध्ययन उनका था। उन्होंने कहा है कि मनुष्य के अंदर जो पूर्णत्व निहित है, उसकी अभिव्यक्ति शिक्षा है। एक बच्चा, जब पैदा होता है, तो उसमें और पशु में कोई अंतर नहीं होता। पशु जैसे अपना सोचता है, बच्चा भी अपना सोचता है। उसका खिलौना



उसके भाई के लेने पर वह रोने लगता है। लेकिन पूर्णत्व अभिव्यक्ति करना, यानी धीरे-धीरे उसका अपनापन बढ़ना, अपने परिवार के साथ, फिर गाँव के साथ, फिर बढ़ते-बढ़ते सृष्टि के साथ। फिर जिसको अंतिम तत्व कहते हैं वहाँ तक पहुँचना, कुल मिलाकर यह शिक्षा है। यह होगा कैसे, इस पर विवेकानंद जी ने कहा कि यह अगर करना है तो हमको प्रकृति का बाह्य और आंतरिक नियमन करना चाहिए। मनुष्य बाह्य प्रकृति का नियमन तो विज्ञान के द्वारा सीख रहा

है। लेकिन यह जो मनुष्य है जिसमें मन है, भावना है, विचार है, उसे अंतर्प्रकृति का नियमन कैसे करना है, इसका कहीं कोई प्रावधान नहीं है और इसीलिए विवेकानंद ने कहा है कि अंतर्प्रकृति और बाह्य प्रकृति का नियमन करना है। इसको कैसे करना है। यह आप ज्ञान के माध्यम से करिए, कर्म से करिए, भक्ति के द्वारा करिए या मनसंयम, योग के द्वारा करिए, एक के द्वारा करिए या सबके द्वारा करिए। यह महत्वपूर्ण है, बाकी सारी बातें गौण हैं। एक तरह से ऐसे जीवन-मूल्यों को लेकर जब जीवन जिए जाते हैं तो धीरे-धीरे एक परंपरा खड़ी होती है, कुछ जीवन-मूल्य खड़े होते हैं, जीवन के व्यवहार खड़े होते हैं, उसे ही हम 'संस्कृति' कहते हैं। जिसमें संस्कृति, जीवन-मूल्य, जो सादगी में निर्मित होते हैं, वे एक पीढ़ी के बाद दूसरी पीढ़ी को जाना चाहिए। यह भी शिक्षा का दायित्व है और इसलिए शिक्षाविदों ने कहा कि शिक्षा सामाजिक समूहों के हाथ में एक महत्वपूर्ण उपकरण है। यह जो सांस्कृतिक विरासत है, परंपरा है, इसे आने वाली पीढ़ियों को संक्रमित करना शिक्षा का दायित्व है और ये दोनों चीजें करना है।

हमारे यहाँ पर तीनों बात का विचार किया गया है।

कभी-कभी लोग कहते हैं कि भारत में केवल वैराग्य प्रधान था या दार्शनिक प्रवृत्तियाँ थीं, ऐसा नहीं है। हमारे यहाँ 64 प्रकार की कलाएँ हैं, जिन्हें सीखना चाहिए। और ये 64 कलाएँ, उसमें सामान्य खेल-कूद से लेकर बाल संगोपन, नगर निर्माण, राज्य निर्माण, युद्ध कलाएँ, अर्थ-शास्त्र सब प्रकार की विधाएँ हैं। केवल दर्शन, चिंतन या वैराग्यपरक भारत की परंपरा थी, ऐसा नहीं, दोनों ही परंपराएँ भारत में थीं। इसलिए उपनिषदों में कहते थे कि परा और अपरा विद्या, दोनों

को जानना है। तीसरी बात, कभी-कभी आती है कि क्या हम कूपमंडूक थे? वैश्वीकरण शब्द तो आज आया है। हमारे यहाँ तो प्राचीन समय से जितने वाक्य देखेंगे, यथा-स्वदेशो भुवनत्रयम्, वसुधैव कुटुंबकम्, कृण्वंतो विश्वमार्यम्, सर्वभूत हिते रताः, उनमें वैश्विक चिंतन रहा है इसीलिए कहा गया है—'आनोः भद्रा कृतवो यंतु विश्वतः'। दुनिया के हर कोने से जो भद्र और श्रेष्ठ विचार हैं, विद्याएँ हैं, वो आएँ। उनका स्वागत है।





# कोरोना का बच्चों पर प्रभाव

कोरोना महामारी ने पूरे विश्व में लोगों को घरों में कैद रहने के लिए मजबूर कर दिया है। देखा जाए तो इसकी वजह से जिंदगी जीने के ढंग में इतना बड़ा परिवर्तन आ गया है कि लगता है कि जैसे समाज के सारे समीकरण ही बदल गए हैं।

## शिक्षा हो गई है वर्चुअल

वायरस से संक्रमित हुए बिना भी हर उम्र का व्यक्ति कोरोना से प्रभावित हुआ है। इससे उपजी समस्याओं से निपटना वयस्कों की तरह ही बच्चों के लिए भी किसी चुनौती से कम नहीं है। भावनात्मक रूप से बच्चे इस तरह प्रभावित हुए हैं कि एक तरफ तो वे इस संक्रमण से बचे रहने के प्रयास में घरों में रहने के लिए मजबूर हैं, दूसरी तरफ अपनी शिक्षा



को लेकर भी वे चिंतित हैं। आरंभ में सुरक्षा का खयाल रखते हुए जब शैक्षिक संस्थानों को बंद करने की बात हुई थी, तब छात्र वर्ग खुश था। बच्चे दिनभर खेलते नजर आने लगे थे। संकट की गंभीरता ने उस समय किसी को भी उतना आंदोलित नहीं किया था, क्योंकि किसी ने सोचा नहीं था कि स्थिति इतनी गंभीर हो जाएगी। लॉकडाउन के कारण अब एक भय का माहौल हर तरफ व्याप्त हो गया है। बच्चों को इस समय घर में सही वातावरण व पूर्ण सहयोग नहीं मिला तो वे मानसिक अवसाद का शिकार भी हो सकते हैं।

ऑनलाइन शिक्षा के द्वारा वे रोज बेशक कक्षाएँ ले रहे हैं, लेकिन वे उतनी सफल साबित नहीं हो सकतीं जितनी कि स्कूल जाकर पढ़ना। जूम क्लासेस उनके लिए बिलकुल ही नई अवधारणा है, जिसमें कई तरह की तकनीकी समस्याएँ भी आती हैं, साथ ही टीचर के साथ जिस तरह से

क्लास में सीधा संपर्क रहता है, उसकी कमी बच्चों के लिए एक बड़ा अवरोध है।

लॉकडाउन के चलते बच्चे घंटों ऑनलाइन पढ़ाई करने को मजबूर हैं। इसके लिए कई सोशल मीडिया प्लेटफॉर्म का इस्तेमाल किया जा रहा है। छह से 12 वर्ष के बच्चों को घंटों ऑनलाइन कक्षाएँ लेनी पड़ रही हैं जिसके कारण मासूम बच्चों को कंप्यूटर, लैपटॉप और मोबाइल के सामने घंटों बैठना पड़ रहा है और उसके बाद उन्हें कई घंटे व्हाट्सएप पर होम वर्क भी करना होता है। इससे न सिर्फ उनकी आँखों पर असर पड़ रहा है, बल्कि घंटों कानों में ईयरफोन लगाने से उनके कानों पर भी इसका बुरा प्रभाव पड़ रहा है। इन ऑनलाइन कक्षाएँ से बच्चों को आँख और कान से जुड़े रोग होने का खतरा लगातार बढ़ रहा है। साथ-ही-साथ इसका प्रभाव बच्चों के मानसिक और शारीरिक रूप पर भी पड़ रहा है।



सुमन बाजपेयी

शिक्षा : एम.ए. (हिंदी) व पत्रकारिता का अध्ययन।

प्रकाशित कृतियाँ : पाँच कहानी संग्रह व दस अन्य विधाओं पर पुस्तकें प्रकाशित। अंग्रेजी से हिंदी में 115 पुस्तकों का अनुवाद। बाल साहित्य में संलग्न व हिंदी व अंग्रेजी दोनों भाषाओं में लेखन। विभिन्न पत्रिकाओं व प्रकाशन संस्थानों में संपादकीय पद पर कार्य। इस समय स्वतंत्र लेखन व पत्रकारिता।

संपर्क : 9810795705

ई-मेल : sumanbajpai@yahoo.co.in

व्यावहारिक दिक्कत यह आ रही है कि छोटे बच्चे ऑनलाइन पढ़ाई से जुड़ाव महसूस नहीं कर रहे हैं। उन्हें नई कक्षा की नई किताबें, कॉपियाँ भी उपलब्ध नहीं हुई हैं। ऐसे में, बच्चों को पढ़ाई का यह तरीका बोझ लगना स्वाभाविक भी है। छोटे शहरों व कस्बों में जिस पढ़ाई को ऑनलाइन का नाम दिया जा रहा है, वह वाट्सऐप के माध्यम से हो रही है। इस पढ़ाई के अंतर्गत अभिभावकों को वाट्सऐप पर एक दिन में ही कई-कई पेज भेज दिए जाते हैं। एक साथ इतने पृष्ठ देखकर बच्चे सहम जाते हैं।

“ मनुष्य सामाजिक प्राणी है, उसे लोगों से मिलना अच्छा लगता है और बच्चे तो अपने हम उम्र साथियों से मिलने को हमेशा लालायित रहते हैं। स्कूल जाने वाले बच्चों के अलावा छोटे बच्चे और कॉलेज जाने वाले युवा, वयस्क सबसे ज्यादा तब प्रभावित होते हैं जब उन पर परिवार के सदस्यों द्वारा प्रतिबंध लगाया जाता है। अब, समाज ने भी उन पर प्रतिबंध लगा दिया है तो निराशा हावी होना स्वाभाविक ही है, क्योंकि वे उन चीजों को नहीं कर पा रहे हैं जो वे करना चाहते हैं। ”

वर्तमान स्थिति को देखते हुए यह भी लग रहा है कि संभव है कि उच्च शिक्षा का यह नया वर्चुअल रूपांतरण हमें बेहतर की ओर ले जाए। ऐसा भी हो सकता है कि भविष्य में शिक्षण जीवंत चेहरों की उपस्थिति से विहीन की बोर्ड एवं स्क्रीन में बदल जाए। और एक वर्चुअल समुदाय की कल्पना कर उससे शैक्षणिक संवाद स्थापित करने की बच्चों को शायद आदत डालनी पड़े। शिक्षक भी होंगे, छात्र भी होंगे, पर दोनों स्क्रीन पर होंगे।

इस समय ऑनलाइन कक्षाओं के चलते बच्चे मिलने वाले असाइनमेंट के कारण व्यस्त रहते हैं और उनका व्यस्त रहना निहायत जरूरी भी है और शिक्षा में आए इस बदलाव के साथ तारतम्य बैठाना भी उतना ही जरूरी है। कई स्कूलों ने तो इन ऑनलाइन कक्षाओं के दौरान स्कूल का माहौल निर्मित करने के लिए यूनिफॉर्म पहनना अनिवार्य कर दिया है। टीचर सिखाने के लिए पीपीटी का उपयोग करते हैं, जो विषय को बेहतर ढंग से समझने में मदद करता है।

मनोवैज्ञानिकों का मानना है कि ऑनलाइन शिक्षा का सबसे बड़ा फायदा यह हुआ है कि इससे जो छात्र कक्षा में शर्म के कारण प्रश्न नहीं पूछ पाते थे, वे ऑनलाइन माध्यमों के जरिये अपनी समस्या खुलकर पूछ लेते हैं। कुछ विशेष कोर्स की ऑनलाइन फीस सस्ते होने से ज्यादा छात्र इसका अधिक लाभ उठा पा रहे हैं।

### तनाव और चिड़चिड़ाहट भर रही है

घर बैठकर बच्चे स्क्रीन के आर-पार अध्यापकों व अपने सहपाठियों से संपर्क जरूर कर पा रहे हैं, पर घर से बाहर न निकल पाने के कारण वे

चिड़चिड़े हो गए हैं। घर से बाहर नहीं निकलने, पसंद का बाहर का खाना और खिलौने न मिलने के कारण उनमें यह बदलाव आ रहा है। आउटडोर गतिविधियाँ बंद हो चुकी हैं और इंडोरगेम्स वापस घर में खेले जाने लगे, बावजूद इसके बाहर जाकर खेलने से कोई शारीरिक गतिविधि न होने के कारण आलस व खीझ उन्हें घेरने लगी है।

बच्चों के लंबे समय तक मोबाइल या लैपटॉप के संपर्क में रहने से मानसिक और शारीरिक तौर पर असर हो सकता है। रोजमर्रा का रूटीन गड़बड़ाने के कारण बच्चों के दिमाग पर बुरा प्रभाव पड़ रहा है।

यूनिसेफ के अनुसार, वर्तमान कोरोना वायरस महामारी की वजह से बच्चों में चिंता, तनाव और अनिश्चितता के भाव हैं। इसके कारणों में स्कूल का बंद होना, विभिन्न गतिविधियों का रुक जाना, आयोजनों व समारोहों का रद्द होना, घर के घर में सीमित रहना और खासकर दोस्तों से दूर रहना शामिल हैं। बहुत से बच्चे इंटरनेट पर सर्फिंग करने और नेट की लत की चपेट में आने के कारण बहुत अधिक समय व्यतीत कर रहे हैं, जो उनके मानसिक स्वास्थ्य को प्रभावित कर सकता है।

डॉक्टर माता-पिता को यह सलाह दे रहे हैं कि यदि वे बच्चों के वर्तमान वैश्विक महामारी से निपटने और उनके मानसिक स्वास्थ्य को सुनिश्चित करने में मदद करना चाहते हैं, तो बच्चों पर अपनी कुंठाएँ न थोपें। माता-पिता को बच्चों को सुरक्षित और स्वस्थ रखने पर ध्यान देना चाहिए।

### सामाजिक दूरी गढ़ रही है नई परिभाषा

हमेशा कहा जाता रहा है कि सामाजिक प्राणी होने के नाते मनुष्य को घुल-मिलकर रहना चाहिए, लेकिन अब वह समय है जब सामाजिक दूरी को महत्व दिया जा रहा है। पूरा विश्व सामाजिक दूरी (सोशल डिस्टेंसिंग) की बात कर रहा है। पहले कोई बीमार होता था तो उसका मनोबल बढ़ाने के लिए लोग उससे मिलने जाते थे, पर आज अपनी ही संतान को इससे संक्रमित हो जाने पर माता-पिता उससे एक दूरी बना रहे हैं।

बच्चों को अब इस नई परिभाषा को अपनाना पड़ रहा है कि उन्हें अब अपने लोगों से ही एक दूरी बनाकर रखनी होगी, क्योंकि यह लड़ाई कितने लंबे समय तक चलेगी, इसके बारे में पक्के तौर पर कोई भी कुछ कहने में असमर्थ है।

किसी भी स्थिति में जब घर से बाहर जाने की अनुमति नहीं होती है, तो पहला दुष्प्रभाव निराशा होती है, क्योंकि आप वह नहीं कर सकते जो आप करना चाहते हैं। मनुष्य सामाजिक प्राणी है, उसे लोगों से मिलना अच्छा लगता है और बच्चे तो अपने हम उम्र साथियों से मिलने को हमेशा लालायित रहते हैं। स्कूल जाने वाले बच्चों के अलावा छोटे बच्चे और कॉलेज जाने वाले युवा, वयस्क सबसे ज्यादा तब प्रभावित होते हैं जब उन पर परिवार के सदस्यों द्वारा प्रतिबंध लगाया जाता है। अब, समाज ने भी उन पर प्रतिबंध लगा दिया है तो

निराशा हावी होना स्वाभाविक ही है, क्योंकि वे उन चीजों को नहीं कर पा रहे हैं जो वे करना चाहते हैं।

समाज में जीने का एक नया चलन बच्चों को उलझन में डाल रहा है, और अनिश्चितता के माहौल से बच्चे तनाव में रहने लगे हैं। हर दिन मौत के बढ़ते आँकड़ों और फैलते संक्रमण, रेड जोन घोषित होते क्षेत्र, ये सब चीजें उनकी चिंता को लगातार बढ़ा रही हैं।

किसी रचनात्मक गतिविधि में संलग्न न हो पाने के कारण उनके भावनात्मक विकास ने एक धीमी रफ्तार पकड़ ली है।

लॉकडाउन में कहीं फँस जाने या घर में ही कैद रहने के कारण, परिवार, दोस्तों और सहकर्मियों से अलग-थलग रहना ज्यादातर बच्चों के लिए असंतुलित और दर्दनाक हो सकता है और इसके परिणामस्वरूप अल्पकालिक या दीर्घकालिक मनोवैज्ञानिक और

शारीरिक स्वास्थ्य समस्याएँ हो सकती हैं। चिंता, आक्रामकता, अवसाद के स्तर में वृद्धि बच्चों में देखी जा सकती है। ऊब बच्चों के अंदर भरने लगी है, जिसकी वजह से वे अभिभावकों व घर में रहने वाले अन्य वयस्कों के साथ ही झगड़ा करने लगे हैं। बच्चे एक

सामान्य जीवन जीने में असमर्थता महसूस करने के कारण एक रिक्तता का अनुभव कर रहे हैं। निराशा गुस्से को जन्म देती है जो किसी-न-किसी तरह से भड़क सकती है।

### सृजनात्मक क्रियाकलापों से जुड़ना जरूरी है

बच्चों पर पड़ने वाले नकारात्मक प्रभावों को रोकने के लिए हालाँकि सोशल मीडिया पर उनके लिए कई गतिविधियाँ आरंभ की गई हैं।



लेकिन स्क्रीन टाइम बढ़ाना इसका कोई सकारात्मक समाधान नहीं है। जरूरी है कि अभिभावक व टीचर को बच्चों को सृजनात्मक क्रियाकलापों में संलग्न होने के लिए प्रेरित करना होगा। उनके भीतर के कौशल को बाहर निकालना होगा। उनके शौक इस समय उन्हें अवसाद से घिरने से बचा सकते हैं। चित्रकला, हस्तशिल्प, खिलौने बनाना, संगीत सीखना व नृत्य सीखना, या पाक

कला में ही अपने हाथ आजमाना जरूरी है।

बच्चों को घर के काम करने के लिए प्रोत्साहित करें। छोटे बच्चों के साथ कहानियों की किताबें पढ़ें, इंडोरगेम्स खेलें। सुबह शाम बच्चों को अपने साथ व्यायाम एवं योगा में शामिल करें।



## आगामी अंक के लिए

### पुस्तक संस्कृति

राष्ट्रीय पुस्तक न्यास की द्विमासिक पत्रिका

पत्रिका का जनवरी-फरवरी, 2021 का अंक 'पूर्वोत्तर राज्य : लोक संस्कृति और साहित्य' विशेषांक होगा।

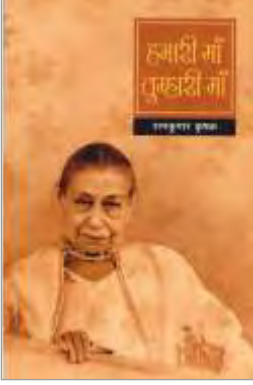
जिसमें पूर्वोत्तर में बोली जाने वाली भाषाओं, साहित्य, महान हस्ती, पुस्तकों और संस्थाओं से संबंधित सामग्री होगी।

इस अंक के लिए सामग्री 30 सितंबर, 2020 तक भेज सकते हैं।

**लेखकों हेतु निर्देश :** 1. सामग्री अधिकतम दो हजार शब्दों तक हो। 2. रचना मौलिक एवं अप्रकाशित होनी चाहिए। 3. रचना के साथ संदर्भ के चित्र अवश्य भेजें। 4. लेखक का चित्र, पाँच पंक्ति में परिचय (संपूर्ण जीवनवृत्त नहीं) भेजें, जिसमें संप्रति, प्रकाशन, सम्मान आदि का विवरण हो। संपर्क के लिए पता, ई-मेल या फोन नंबर जो भी सार्वजनिक करना चाहें, भेजें। 5. किसी विशेषांक में प्रकाशनार्थ सामग्री समयसीमा के पश्चात भेजने पर स्वीकार्य नहीं होगी। 6. पत्रिका के संपादक के ई-मेल पर भेजी गई रचनाएँ ही स्वीकार्य होंगी। रचना कृति, यूनिकोड / शिवा मीडियम फॉण्ट में एम.एस. वर्ड या पेजमेकर में ही हो।

**नोट :** पत्रिका का मुख्य उद्देश्य पुस्तक प्रोन्नयन और पठन अभिरुचि के विकास के लिए उपयोगी सामग्री का प्रकाशन करना है। कहानी-कविताओं के लिए इसमें कम ही स्थान है।

संपादक (पुस्तक संस्कृति), राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत, 5 नेहरू भवन, वसंत कुंज, सांस्थानिक क्षेत्र, फेज-2, नई दिल्ली-110070  
ई-मेल : editorpustaksanskriti@gmail.com • दूरभाष : 011-26707758, 26707876



समीक्षक : गणपत तेली

लेखक : रामकुमार कृषक

प्रकाशक : राष्ट्रीय पुस्तक न्यास,

भारत, नई दिल्ली-110070

पृष्ठ : 52

मूल्य : रु. 80/-

## हमारी माँ, तुम्हारी माँ

» जिस तरह से कई भारतीय पाश्चात्य देशों की संस्कृति और सभ्यता से प्रभावित होकर उसकी ओर आकर्षित होते हैं, उसी तरह से अनेक यूरोपीय नागरिक भी भारतीय संस्कृति और सभ्यता की तरफ आकर्षित होते हैं। ऐसे ही लोगों में एक नाम अरविंद दर्शन की अनुगामिनी मिरा अल्फासा का है। मिरा का जन्म फ्रांस में हुआ था और बाद में वे गीता दर्शन से प्रभावित होकर

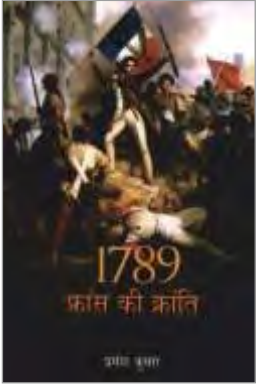
भारत आई। यहाँ वे श्री अरविंद के संपर्क में आईं। उन्हें श्री अरविंद माता कहकर पुकारा करते थे इसलिए उनके सभी अनुयायी भी उन्हें श्रीमाँ कहने लगे। 29 मार्च, 1914 को श्रीमाँ पांडिचेरी स्थित आश्रम में श्री अरविंद से मिलीं और उस समय दोनों को एक-दूसरे से मिलकर ऐसा लगा कि दोनों को एक-दूसरे की तलाश थी। प्रथम विश्वयुद्ध के समय मिरा को फ्रांस जाना पड़ा, लेकिन कुछ ही वर्षों बाद वह जापान के रास्ते वापस भारत लौट आईं। जापान में उनकी मुलाकात विश्वकवि रवीन्द्रनाथ टैगोर से हुई। 24 नवंबर, 1926 को मिरा अल्फासा पांडिचेरी लौटकर अरविंद की शिष्या बनीं। इन्हीं मिरा के जीवन पर रामकुमार कृषक ने 'हमारी माँ, तुम्हारी माँ' पुस्तक लिखी है, जिसमें संक्षेप में मिरा का जीवन और उनसे जुड़ी महत्वपूर्ण घटनाओं का वर्णन किया है।

लेखक इस किताब में मिरा के बचपन से लेकर उनके मृत्यु तक के जीवन का आकर्षक और चमत्कारिक वर्णन प्रस्तुत करते हैं, लेकिन उनके केंद्र में ओरोविलो आश्रम रहता है। मिरा ने अरविंद के साथ मिलकर ओरोविलो आश्रम की स्थापना की। इस आश्रम में उन्होंने बिना किसी भेदभाव का आध्यात्मिक वातावरण तैयार किया, जहाँ लोग देश, धर्म, जाति, लिंग के भेदभाव के रह सकते हैं। लेखक लिखते हैं, 'एक नया संसार जो उनकी और श्री अरविंद की कल्पना में था, आश्रम के रूप में साकार हो रहा था। एक ऐसा संसार, जिसकी दो शक्तियाँ होंगी—अध्यात्म और विज्ञान। अध्यात्म उसकी आत्मा की शक्ति, विज्ञान उसके शरीर की शक्ति। और दोनों में कोई झगड़ा

नहीं होगा। एकता होगी। प्रेम होगा।' आश्रम की स्थापना जिस उद्देश्य से की गई, वह जल्दी ही फलीभूत होने लगा। इस आश्रम में किसी प्रकार का कोई भेदभाव नहीं था। लेखक इस आश्रम की संरचना के बारे में लिखते हैं, "वह आश्रम था, पर कोई साधु, कोई मुल्ला, कोई पादरी, कोई ग्रंथी वहाँ नहीं था। देश के हर प्रदेश के, हरेक जाति, धर्म और हर भाषा के बोलने वाले साधक आश्रम में थे, अब अन्य देशों के लोग भी आए। कोई अमेरिका से, कोई इंग्लैंड से, कोई जर्मनी से, कोई फ्रांस से, कोई चीन से, कोई जापान से। लंका, इटली और कई अफ्रीकी देशों से भी लोग आ पहुँचे। यानी सारी दुनिया के लोग—स्त्री और पुरुष, आश्रम में आ जुटे।" यह ओरोविलो आश्रम आज भी पांडिचेरी में दुनिया भर के लोगों का आश्रय और पर्यटन स्थल बना हुआ है, जहाँ श्री अरविंद और मिरा के सपनों को साकार करने के प्रयास किए जा रहे हैं।

मिरा के जीवन में गीता दर्शन के बाद प्रथम विश्वयुद्ध के विनाशकारी अमानवीय मंजर ने महत्वपूर्ण प्रभाव डाला। प्रथम विश्वयुद्ध में बड़े पैमाने पर मार-काट हुई थी। उसी हिंसात्मक माहौल के संदर्भ में मिरा के अनुभवों के बारे में रामकुमार कृषक लिखते हैं कि "मनुष्य लड़ रहे थे, मनुष्यता रो रही थी-मर रही थी। जब भी, जहाँ भी कोई मनुष्य मरता, तो वही मरती थी। वही घायल होती थी। फिर भी वह जीवित और स्वस्थ थी। इसीलिए तो वह घायलों की मरहम-पट्टी कर रही थी। बीमारों को दवा दे रही थी। दुखियों के आँसू पोंछ रही थी।" मनुष्यता के इसी संकट ने मिरा को आश्रम को आश्रयस्थल का रूप देने की प्रेरणा दी। यहाँ मिरा अरविंद के बाद भी आश्रम को संचालित करती रहीं और यहीं उन्होंने अंतिम साँस ली।

मिरा के जीवनवृत्त की चमत्कारिक कहानियों को समेटे यह किताब मिरा और श्री अरविंद के जीवन और चरित्र को अद्वितीयता के साथ स्थापित करती है। वैसे भी एक दार्शनिक और विचारक के रूप में अरविंद भारत और दुनिया भर में जाने जाते हैं तथा उनका आश्रम भी जाना-माना है, लेकिन यह किताब उस आश्रम की स्थापना की कहानी और परिश्रम को पाठकों के सामने प्रस्तुत करती है। किताब में किया गया रेखांकन इसके आकर्षण में वृद्धि करता है। लेकिन किताब जिस शैली में लिखी गई है, वह पाठकों के सामने चमत्कारिक कहानियाँ लाती है, न कि प्रामाणिक जानकारियाँ, इसलिए यह किताब अरविंद दर्शन और ओरोविलो आश्रम में रुचि रखने वाले पाठकों के लिए पठनीय है।



समीक्षक : राजेंद्र भट्ट

लेखक : प्रमोद कुमार

प्रकाशक : राष्ट्रीय पुस्तक न्यास,

भारत, नई दिल्ली-110070

पृष्ठ : 174

मूल्य : ₹. 135/-

1789

## फ्रांस की क्रांति

» सामान्य राजनैतिक परिवर्तनों में केवल सत्ता और सत्ताधारी बदलते हैं, लेकिन क्रांतियों में पूरी शासन प्रणालियाँ, समाज के जीने के तौर-तरीके और विचारों में दूरगामी परिवर्तन आते हैं और एक नए युग का ही सूत्रपात हो जाता है। फ्रांस की 1789 में विस्फोटित और करीब 10 वर्षों तक अनेक दौर से गुजरी क्रांति ऐसी ही घटना थी जिसने न केवल फ्रांस,

बल्कि पूरी दुनिया को नई उम्मीदों, नई सुबह की दृष्टि से समृद्ध कर दिया। इस क्रांति ने पुराने शाही-सामंती दौर की सत्ता और जीवन-मूल्यों को हमेशा के लिए समाप्त कर दिया और फ्रांस, यूरोप और पूरे विश्व में लोकतंत्र तथा समान अधिकारों के युग का सूत्रपात कर दिया। हालाँकि इस क्रांति की तत्कालीन परिणति नेपोलियन की सैनिक तानाशाही में हुई, लेकिन राजतंत्र, चर्च तथा संभ्रांत सामंतों के विशेषाधिकारों वाले, दासता की प्रथा वाले युग का हमेशा के लिए पटाक्षेप हो गया। विश्व भर में इस क्रांति का प्रभाव पड़ा। इसी क्रांति के दौरान लिखित और पारित 'डिक्लेरेटन ऑफ द राइट्स ऑफ मैन एंड ऑफ द सिटिजन' (मानव और नागरिक के अधिकारों की घोषणा) उदार लोकतंत्रों का आदर्श बना। स्वतंत्र भारत के संविधान के 'स्वतंत्रता, समता और भाईचारे' के आदर्श इसी क्रांति से प्रेरित हैं।

हिंदी में ऐसे महत्वपूर्ण विषयों पर विद्वानों की लिखी मौलिक पुस्तकों का अभाव है। पाश्चात्य इतिहास के विद्वान प्रोफेसर प्रमोद कुमार की यह पुस्तक ऐसे अभावों की पूर्ति का प्रयास है। इस छोटी पुस्तक में तथ्य और जानकारियाँ काफी सघन हैं। पुस्तक क्रांति के पीछे के समय से शुरू होती है और क्रांति-पूर्व परिस्थितियों, सामाजिक असमानता और आम लोगों पर अत्याचारों-अन्याय के बारे में बताती है। इस क्रांति के पुरोधा विचारकों, दार्शनिकों के सिद्धांतों का भी विवरण है। इसके बाद 1789 की जन क्रांति, राजतंत्र की समाप्ति, सड़कों पर विद्रोह, एक के बाद एक राष्ट्रीय सभाओं, क्रांति की धार को ज्यादा जनमुखी बनाते नए-नए नेताओं, उथल-पुथल और हिंसा के विवरण हैं। रोबीस्पियरे के 'आतंक के काल' के बाद नेपोलियन की सैनिक तानाशाही के आरंभ तक यह विवरण जाता है। क्रांति से जुड़े महत्वपूर्ण ग्रंथों का भी विवरण है।

इसके बाद के संदर्भों में, क्रांति से जुड़ी अनेक महत्वपूर्ण टिप्पणियाँ हैं। पुस्तक में फ्रेंच उच्चारणों की शुद्धता का भी ध्यान रखा गया है। फ्रांसीसी क्रांति के विभिन्न चरणों के बारे में जानने के इच्छुक विद्यार्थियों को एक ही स्थान पर यह क्रमबद्ध जानकारी एक डाइजेस्ट की तरह मिल जाती है।

## हृषीकेश सुलभ : संकलित कहानियाँ

हृषीकेश सुलभ वरिष्ठ कहानीकार, नाटककार और रंगकर्मी हैं। इस संग्रह में उनकी 15 कहानियाँ हैं। पुस्तक की प्रस्तावना में लेखक 'कहानी में कहानीपन और पठनीयता को बचाए रखने' के संघर्ष को इस दौर की बड़ी चुनौती मानते हैं। 'नकली और 'सरलीकृत कथानकों' और 'सतही क्रांतिकारिता' से आगाह करते हुए लेखक कहानी को मूलतः यथार्थवादी विधा मानते हैं जो

'समाज की आंतरिक हलचलों से मुँह नहीं मोड़ सकती।' वह 'जीवन जीने के हठ' को, जिजीविषा को कहानी के लिए महत्वपूर्ण मानते हैं।

इस परिप्रेक्ष्य में देखें तो यथार्थ को पूरी बारीकियों में जानने और उसे बयान करने का लेखक का दायरा बहुत व्यापक है। उतनी ही समर्थ और यथार्थपरक उनकी भाषा भी है। इन कहानियों में घटनाक्रम का देखा-समझा विस्तार है और संवेदना तथा अर्थ घटनाक्रम से ही उभरकर आते हैं।

ज्यादातर कहानियों में बिहार का ग्रामीण अंचल है, पर यह गुजरे जमाने के कुछ लोगों, जातियों, समुदायों के एकछत्र दबदबे और कुछ के मूक समर्पण का काल नहीं है, न ही यह कोई 'अहा ग्राम्य जीवन भी क्या है' किस्म का घर-बैठे वर्णित रूमानी गाँव है। यह जातियों, धर्मों के पुराने समर्थ-जनों और तब के मूक-मजलूमों के संबंधों में बदलती 'सोशल इंजीनियरिंग' वाले घात-प्रतिघातों वाला गाँव है। इसमें शहर की भी दस्तक है, बाहर से आए पैसे और बदले राजनैतिक सत्ता-समीकरणों की गमक भी है। यह ग्रामीण-शहरी के खाँचों में बँटा नहीं, 'रबन' परिदृश्य है।

हृषीकेश सुलभ के चरित्र मात्र करुणा जगाते, बर्दाश्त करते चरित्र नहीं हैं। वे अपने हक और बेहतरी के लिए फैसले लेने वाले चरित्र हैं—खासकर श्रीमती सुधा सिंह, बिन्नी, लुबना, हवी डार्लिंग की



समीक्षक : राजेंद्र भट्ट

लेखक : हृषीकेश सुलभ

प्रकाशक : राष्ट्रीय पुस्तक न्यास,

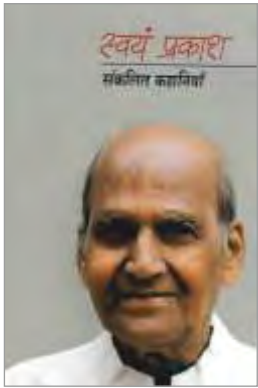
भारत, नई दिल्ली-110070

पृष्ठ : 252

मूल्य : ₹. 265/-

अनाम पत्नी, फरीदन जैसे ज्यादातर महिला चरित्र। कहीं वे सिर्फ महिलाओं पर लागू होने वाली नैतिकता को भी आईना दिखाती हैं। जातीय समीकरणों के बदलाव से, पुराना समर्थ-पतित पुरोहित वर्ग विलाप कर रहा है तो कहीं समझौते कर रहा है। मुस्लिम समुदाय में भी स्त्री अपनी अस्मिता के लिए खड़ी हो गई है और परंपरागत नैतिकता के भय और पाप-बोध को झटककर अपना सुख माँग रही हैं। कुछ कहानियों में प्रेम की गहरी संवेदना है तो कहीं पत्रकारिता की दुनिया की नीच चालाकियाँ भी हैं। लेकिन, इन सब में, यथार्थ का विस्तार और प्रामाणिकता है। इस तरह से देखें तो ये हवाई या 'रचे हुए' घटनाक्रम की कहानियाँ नहीं हैं, बल्कि जमीनी विवरण के विस्तार और प्रामाणिकता वाली प्रेमचंद परंपरा की, लेकिन आज के सामाजिक उथल-पुथल वाले समाज की कहानियाँ हैं।

आशा है, ये कहानियाँ भारत के बदलते समाज के जीवन, वैचारिकता, संघर्षों और घात-प्रतिघात के बारे में पाठकों की समझ का विस्तार करेंगी, उन्हें अधिक संवेदनशील बनाएँगी।



समीक्षक : जनार्दन मिश्र

लेखक : स्वयं प्रकाश

प्रकाशक : राष्ट्रीय पुस्तक न्यास,

भारत, नई दिल्ली-110070

पृष्ठ : 280

मूल्य : रु. 295/-

## स्वयं प्रकाश : संकलित कहानियाँ

» इस पुस्तक में कुल 25 कहानियाँ संकलित हैं। ये कहानियाँ भाषा, भाव एवं संवाद के स्तर पर कहीं भी जटिल प्रतीत नहीं होतीं। जीवनधर्मी विचारधारा से जुड़ी ये कहानियाँ मानवीय सरोकार को गहराई से रेखांकित करती हैं।

‘उस तरफ’ इस संग्रह की ऐसी कहानी है जिसमें इनसानियत को रेखांकित किया गया है। मुझे अपने प्रथम

साहित्यिक गुरु ‘डॉ. आंबेडकर के जीवनीकार’ हिमांशु राय का कथन याद है। एक बार किसी संदर्भ में डॉ. आंबेडकर ने कहा था कि किसी अच्छे काम को रेखांकित कर किसी व्यक्ति को पुरस्कृत करना अच्छी परंपरा की शुरुआत नहीं कही जा सकती है। शायद हमने यह मान लिया है कि अच्छा काम करना मनुष्य का गुण-धर्म नहीं है। इस कहानी में भी राजस्थान की अति पिछड़ी बस्ती का निवासी नखत सिंह एक अखबार के संवाददाता, चटर्जी से कहता है, “तुम लोग क्यों मुझे आसमान पर चढ़ा रहे हो? मैंने ऐसा क्या कर दिया जो इनसान को नहीं करना चाहिए? यह सम्मान मुझे दे रहे हो तो क्या इसका

मतलब है तुम आदमी से उस व्यवहार की उम्मीद नहीं रखते जो मैंने किया है; क्योंकि मेरे व्यवहार को तुम असाधारण मान रहे हो। तुमसे कह रहे हैं कि एक कुआँ खुदवा दो, सो तो नहीं, बड़े इंटरव्यू लेने वाले।”

अपनी जान को जोखिम में डालकर नखत सिंह ने आग में धिरे एक प्राइमरी स्कूल के 12 बच्चों को बचा लिया था, पर उसके लिए वह शोहरत हासिल नहीं करना चाहता था। उसका मानना है कि वहाँ पहुँचे सभी लोगों ने उन बच्चों को बचाने की कोशिश की, मैंने भी की। इसमें बड़ी बात क्या है। यह तो इनसानियत का फर्ज है। पर संवाददाता की रिपोर्ट को नजरअंदाज कर कंपोजीटर नखत सिंह को असाधारण व्यक्ति के रूप में घोषित कर देता है और वही अखबार में छपता है। कुआँ का कहीं जिक्र नहीं। अखबार का कामकाज कैसे चलता है, उस दृष्टि को भी यह कहानी दर्शाती है। कहानीकार पुरस्कृत होने वाले लोगों पर व्यंग्य भी करता है कि पिछड़ी बस्ती में रहने वाले एक अनपढ़ व्यक्ति की सोच कितनी व्यापक है, जबकि शहरों में रहने वाले लोग एक छोटा-सा सामाजिक कार्य करके पुरस्कृत होने के लिए कई तरीके के जुगाड़ लगाते हैं। पत्र-पत्रिकाओं में अपना नाम छपवाने के लिए धन भी खर्च करते हैं।

पत्रानुकूल भाषा-शैली गढ़ने में स्वयं प्रकाश इतने दक्ष हैं कि इस कहानी में राजस्थान का वह क्षेत्र पूरी शिद्दत के साथ पाठक के सामने उभरकर आता है। उस क्षेत्र की बोलचाल, रहन-सहन, बात-व्यवहार, खान-पान, रख-रखाव पाठक की आँखों के सामने चलचित्र की तरह चलता हुआ नजर आता है।

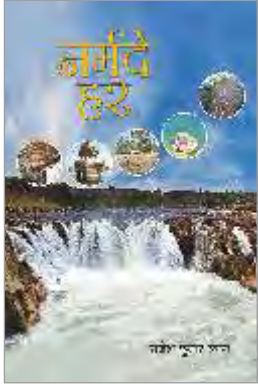
इस संग्रह की पहली कहानी ‘नगर-नरभक्षी’ मुंबई जैसे महानगर में रहने वाले बेबस बेरोजगार लोगों के जीवन-संघर्ष को बयाँ करती है। पिछली सदी के 60-70 के दौर में गाँव-देहात कस्बाई परिवेश में रहने वाले समान तबके के किशोर-किशोरियों को लगता था कि मुंबई या किसी और महानगर में जाने पर उनका सारा दुख दूर हो जाएगा, उनको मनमाफिक रोजगार मिलेगा। वे अपने मनमुताबिक जिंदगी जिएँगे। पर ऐसा कुछ भी नहीं था, इसका ज्वलंत उदाहरण है ‘नगर-नरभक्षी’ कहानी। इस कहानी का पात्र नन्नु जिसके भरोसे महानगर मुंबई जाता है वही व्यक्ति उसको अपना शिकार बनाता है। नन्नु कहीं का नहीं रह जाता है। ‘नगर-नरभक्षी’ स्वयं प्रकाश की प्रारंभिक दौर की कहानी है। अब हालात में काफी परिवर्तन आए हैं।

‘एक जरा-सी बात’ और ‘कानदाँव’ संग्रह की ऐसी दो कहानियाँ हैं जो अन्य कहानियों की अपेक्षा आकार में छोटी हैं। ‘एक जरा-सी बात’ में ऐसे शिक्षक की मनोदशा का चित्रण है जो ट्यूशन पढ़ाने वाले शिक्षकों को हेय दृष्टि से देखते हैं। हालाँकि पिछली सदी के सातवें दशक तक भारत में आर्थिक दृष्टि से शिक्षकों की दशा बड़ी दयनीय थी, पर उन्हें गाँव-घर में बहुत मान-सम्मान मिलता था। कहीं जाने पर उन्हें बैठने के लिए औरों की अपेक्षा ऊँचा आसन मिलता था, पर जो

शिक्षक किसी अमीर के बच्चों को पढ़ाते थे, उनकी नजर में वे शिक्षक की नहीं कर्मचारी की हैसियत रखते थे। बच्चों द्वारा भी उन्हें यथोचित मान-सम्मान नहीं मिलता था। शचींद्र बाबू भी एक विद्यालय में शिक्षक थे, पर वह स्वयं कुछ शर्तों के साथ एक अमीर के बच्चे को ट्यूशन पढ़ाने के लिए राजी हो जाते हैं। शुरू में उन्हें अमीरों के जिन विचारों एवं व्यवहारों से नफरत होती थी, धीरे-धीरे उन्हीं विचारों और व्यवहारों को अलग तरह से तर्क गढ़कर स्वीकारने लगते हैं। यह जिंदगी का सच है कि जिसे हम नकारते हैं, उसके लिए भी हम तर्क गढ़ लेते हैं। जिसे स्वीकारते हैं उसके लिए भी तर्क गढ़ लेते हैं। जिन्हें हम बौद्धिक श्रेणी में गिनते हैं वे कुछ भी करने से पहले उस तर्क को सैद्धांतिक रूप में गढ़ लेते हैं ताकि कोई उनसे पूछे तो उसका माकूल

जवाब दे सकें। यही उनकी बौद्धिकता के लक्षण साबित होते हैं। महीने बाद शर्तींद्र बाबू ट्यूशन पढ़ाना छोड़ देते हैं, उसके पीछे भी उनका तर्क मौजूद है।

स्वयं प्रकाश की अनेक कहानियों में राजस्थान का जनजीवन पूरी शिद्दत के साथ उभरकर आया है। उनके पात्र बुनियादी भाषा-संस्कार कभी नहीं भूलते। वे बराबर आम आदमी के साथ खड़े नजर आते हैं। उनकी कहानियाँ मनुष्यता को रेखांकित करती हैं। उनकी कहानियों में गाँव, कस्बा, शहर, महानगर सब आए हैं। सबका अपना-अपना चरित्र है। वे जीवन को सदैव आशावादी दृष्टि से देखते हैं एवं शोषण के विरुद्ध खड़े नजर आते हैं। उनकी कहानियों की विशेषता है कि वह जन-संघर्ष में भी सौंदर्य की खोज कर लेते हैं।



लेखक : राजेश कुमार व्यास  
प्रकाशक : राष्ट्रीय पुस्तक न्यास,  
भारत, नई दिल्ली-110070  
पृष्ठ : 130  
मूल्य : रु. 190/-

» प्रिय डॉ. व्यास जी,

आपकी पुस्तक नर्मदा हर मिली। आभारी हूँ। आपने यात्रा के महत्व को राहुल सांकृत्यायन के बाद फिर से स्थापित कर दिया है। आपने पुरोवाक् यात्रा को जीवन का अंग बना दिया है। मेरा अनुभव है कि यात्रा वृद्धावस्था से पहले ही करनी

चाहिए, अन्यथा कष्टप्रद ही होगी। हमें सबसे पहले अपने देश को देखना चाहिए। भारत में ही इतने स्थान हैं कि एक जीवन में नहीं देख सकते। आपने नर्मदा की यात्रा की, अपने अनुभव लिखे तो ये इतने जीवंत हैं कि पाठक इस पुस्तक से नर्मदा की यात्रा कर लेता है। नर्मदा तो गंगा की तरह ही संस्कृति और धर्म की तीर्थ है और उसी प्रकार से पूजनीय है। मैंने एक बार नर्मदा के दर्शन किए थे और मैं धन्य हो गया था। और आपने तो नर्मदा को अपनी आत्मा का अंग बना लिया है तो आपकी धन्यता आध्यात्मिक हो गई है।

आपने 'नर्मदा हर' भेजकर और मुझे पढ़ने का अवसर देकर उपकृत कर दिया है। आभार के साथ...

कमल किशोर गोयनका  
उपाध्यक्ष, केंद्रीय हिंदी संस्थान, आगरा

राजेश व्यास जीवन से भरपूर लेखक हैं। इतिहास उनके लेखन में जीवन की गन्ध है। वे जहां भी जाते हैं, उन्हें वे स्थान खूबसूरतियों और सुश्रियों से भरपूर जान पड़ते हैं। और वे गए हैं खजुराहो, ज्वालियर, गोरखपुर, अयोध्या, त्रिपुरा, काशी, उज्जैन, एरिद्वार, नर्मदा, केन, सरयू, तथा और भी कई जिन जगह जाते हैं उसका चेहरा कभी खूबसूरती से तराश देते हैं। यात्रा-वृत्तान्त के बढाने वे व्यापक संस्कृति-विमर्श करते हैं। उनकी पर्यवेक्षण शक्ति विलक्षण है। सूक्ष्म से सूक्ष्म तथ्य भी उनकी पैनी निगाह से छूच नहीं सकता। उनके मंदिरो और भूतियों के वरिष्ठ में हमें हमारे भव्य अतीत के दर्शन होते हैं। प्रकृति तो मानो उनकी अंतरंग मित्र है। मौन की आभोगी में नदना उन्हें अच्छा लगता है।

पुस्तक के लेखक कहीं पुरातत्ववेत्ता, कहीं इतिहासवेत्ता तो कहीं कलाभारती जान पड़ते हैं। उन्हें पढ़ना बौद्धिक रूप से समृद्धि लेना है। लेखों के शीर्षक लेखक की रचनात्मक कल्पना के परिचायक हैं। अपनी भाषा में वे बीच-बीच में राजस्थानी शब्दों का माधुर्य घोलते चलाते हैं। मानवता का सांस्कृतिक विकास उनके समस्त लेखन की आधारशिला है।

अपने यात्रा-वृत्तान्त को जीवंत बनाने के लिए लेखक ने एक युक्ति दंड, निशली है। यात्रा भले ही भूलकाल में हुई हो, वर्णन परमिम काल में ही करते हैं। इच्छे लगता है यात्रा एकर सामने ही घटित हो रही है। इस प्रकार लेखक को अपनी यात्राओं का प्रत्यक्षदर्शी बना लेता है।

राजेश व्यास एक बहुमुखी विद्वान हैं। उनका पांडित्य देखते ही तो इस पुस्तक का नाम 'व्यास पर्व' रखना चाहेगा।

उपसंगल वेगड

## नुमाइंदा शायरों का गुलदस्ता

समीक्षक : मनोज मोहन • प्रकाशक : मंजुल प्रकाशन, भोपाल (मध्य प्रदेश)।

मंजुल प्रकाशन ने मशहूर शायरों की नुमाइंदा शायरी शृंखला में चिंतन और भावों के विचार से मीर और इकबाल के बीच की दो शताब्दियों के सात शायरों की गजलों को पेश किया है। शाहजहाँ के समय में 'रेखता' का नाम बदलकर उर्दू रख दिया गया। उत्तर मुगल काल में हिंदवी जवान में फारसी शब्दों के बढ़ते चलन के बाद लोग इसे 'रेखता' कहने लगे थे। हातिम, आबरू आदि के बाद मीर, सौदा और दर्द ने उर्दू ग़ज़ल को आगे बढ़ाया। वह उर्दू का स्वर्णिम समय रहा है। सामाजिक परेशानियों से घबराकर मीर, सौदा के साथ बहुत से शायरों ने लखनऊ का रुख किया था। उस समय वहाँ का शासन अच्छा समझा जाता था। लखनऊ के तत्कालीन नवाब साहित्य और कला के मुरीद माने जाते थे। उनके समय इंशा, मुसहफ़ी के बाद नासिख और आतश आदि ने ग़ज़ल के क्षेत्र में अपना नया मुकाम बनाया। मसनवी में मीर हसन ने कमाल दिखाया। लोग कहते हैं लखनऊ स्कूल ने जवान की सफ़ाई और घुलावट में बड़ी उन्नति की। अवध के नवाबों में, विशेषकर वाजिद अली शाह ने उर्दू साहित्य को नई ऊँचाई दी।

उसी समय दिल्ली में ज़ौक, मोमिन और ग़ालिब ने अपनी गजलों में दार्शनिक तत्व को शामिल कर उर्दू ग़ज़ल को ऊपर उठाया

था। ग़ज़ल में ग़ालिब ने भावना और आध्यात्मिक विचारों के साथ दार्शनिकता को अधिक महत्व दिया। ग़ज़ल के पुराने ढंग में दाग़ और अमीर मीनाई ने ग़ज़ल में शोखी और अपने जमाने के मुहावरे को शामिल कर उसे समृद्ध किया। हाली से चलते हुए इक़बाल, जोश और ज़फ़र आदि ने इसमें दर्शन, प्रकृति और राजनीति के तत्व को शामिल किया।

उर्दू ग़ज़लों को पढ़ते समय इस बात का खयाल रखना जरूरी है कि वह भारत की ही खास भाषा रही है और उसे उस सभ्यता की निशानी माना जाता है, जो मुसलमानों के भारत में बसने और हिंदुओं के साथ भाईचारा रखकर सम्मिलित हो जाने से उत्पन्न हुई है। उर्दू साहित्य में शायर को खुदा का शिष्य भी कहा गया है और उसे पैगंबर का भी स्थान हासिल है। इन सातों शायरों में मीर तकी मीर अकेले ऐसे शायर हैं जिनको खुदा-ए-सुखन (शायरी का खुदा) कहा गया है। वली दकनी, सौदा, नजीर अकबराबादी, अनीस, ग़ालिब और इक़बाल के होते हुए मीर उर्दू शायरी की महानता की गद्दी पर बैठने वाले वो भले अकेले नहीं हैं, लेकिन यह सच है कि उर्दू शायरी के सर्वोच्च शिखर पर मीर ही विराजमान हैं—



### मीर

पृष्ठ : 110

मूल्य : रु. 125/-

सूफ़ी पिता की संतान मीर अपनी शायरी में सादगी के लिए जाने जाते हैं। उनकी शायरी में जितनी कोमलता और घुलावट है उतनी ही कटुता और कड़ापन भी देखने को मिलता है। सच

यह है कि मीर ने ग़ज़ल को अपने युग का आईना बना दिया था। उनकी शायरी पर तत्कालीन राजनीतिक और सामाजिक हालात की पूरी धूप पड़ रही थी। उनका जन्म आगरा में हुआ था। पिता का इंतकाल जल्द हो गया तो जीविका की तलाश में उन्हें दिल्ली का रुख करना पड़ा था। सौतेले भाई के मामा सिराजुद्दीन खाँ से उन्होंने अरबी, फारसी, हिंदी और संस्कृत में तालीम हासिल की। सैयद असादत अली से भी मार्गदर्शन प्राप्त किया। यही कारण है कि मीर ने हिंदुस्तानी लब-ओ-लहजे को फारसी-ओ-लहजे पर तरजीह दी। उनके पास कई ऐसी ग़ज़लें हैं जिन्हें इक़तारे पर गाया जाए तो वह सूफ़ियों, फकीरों और भक्तों के दिल की आवाज से मिल जाएँगी, जैसे—

“पत्ता-पत्ता बूटा-बूटा हाल हमारे जाने है  
जाने न जाने गुल ही न जाने बाग़ तो सारा जाने है”



### ज़फ़र

पृष्ठ : 110

मूल्य : रु. 125/-

उर्दू शायरी की दुनिया में बहादुरशाह ज़फ़र एक उज्ज्वल सितारे की तरह अपनी चमक बिखेरते हैं। वे मुगलिया वंश के आखिरी बादशाह थे। उनका पूरा नाम अबूज़फ़र

सिराजुद्दीन मुहम्मद बहादुरशाह था। शायरी का उपनाम 'ज़फ़र' था। कवि-हृदय बहादुरशाह को दिल्ली का आखिरी ताजदार बादशाह होने का सौभाग्य मिला। 28 मई, 1837 को 62 साल की उम्र में अंग्रेजों की सहमति से वे मुगलिया साम्राज्य के वैभव-विहीन दिल्ली के सिंहासन पर बैठे। जब 1857 के विद्रोहियों ने उनके नेतृत्व में फिरंगियों से पहला स्वाधीनता-संग्राम लड़ने का फैसला लिया तो बहादुरशाह ने उसे स्वीकार कर अपनी वतनपरस्ती का परिचय दिया था।

वे मन-मिजाज से शासक न थे। खाली खजाने के मालिक ज़फ़र ने अपने जीवन में तमाम प्रतिकूलताओं के बावजूद गहरी त्याग भावना का परिचय दिया। उनकी शायरी में जहाँ एक ओर ढलते हुए शाही ठाठ का असर दिखता है, वहीं उनके स्वभाव में सूफ़ीपन की

झलक और गहरा मानवीय सरोकार भी देखने को मिलता है। एक बादशाह होते हुए भी जौक, ग़ालिब और मोमिन जैसे उस्तादों की शागिर्दी स्वीकार करने में उन्हें कोई हिचक महसूस नहीं हुई। उनकी शायरी में उनके दर्दों और भावनाओं की जो अभिव्यक्ति देखने को मिलती है, वही उन्हें उर्दू अदब के महान शायरों की पंक्ति में खड़ी कर देती है। बहादुरशाह ज़फ़र के समय से ही लाल किले में मुशायरों के आयोजन होते थे। 1858 ई. में अंग्रेजों ने उन्हें कैद कर रंगून भेज दिया वहीं 07 नवंबर, 1862 को उन्होंने अंतिम साँस ली।



## जौक

पृष्ठ : 110

मूल्य : रु. 125/-

मोहम्मद इब्राहिम जौक उर्दू अदब के एक मशहूर शायर थे। इनका असली नाम शेख़ इब्राहिम था। ग़ालिब के समकालीन शायरों में जौक बहुत ऊपर का दर्जा रखते हैं। उनका जन्म 1789 में शेख़ मुहम्मद

रमजान के घर हुआ था। उनके पिता गरीब सिपाही जरूर थे, लेकिन अत्यंत परिश्रमी, बुद्धिमान और नेक इनसान थे जिसका असर उनके जीवन के साथ उनकी शायरी पर भी पड़ा। बहादुरशाह के पिता अकबर शाह ने उन्हें 19 साल की आयु में खाकान-ए-हिंद की उपाधि दी थी, बाद में मलिक-उल-शुअरा की उपाधि भी मिली। बहादुरशाह बादशाहत मिलने से पहले ही उन्हें अपना उस्ताद तस्लीम कर लिया था।

जौक की ग़ज़लों में मज़मूनों का नयापन, जबान की मिठास, मुहावरों का कसैलापन और इन सबका उचित प्रयोग उनके कलाम की विशेषताएँ हैं। जौक की शायरी में अलंकारों के खूबसूरत प्रयोग हैं, फिर भी उनकी शायरी आम आदमी की जबान के निकट है।

लाई हयात आए, कज़ा ले चली चले।

अपनी खुशी न आए, न अपनी खुशी चले।।

और

बाग़े आलम में जहाँ नख़्ख़े हिना लगता है।

दिले पुर खूँ का वहाँ हाथ पता लगता है।।



## ग़ालिब

पृष्ठ : 156

मूल्य : रु. 145/-

उर्दू और फारसी के महानतम शायरों में असदुल्लाह बेग़ ख़ाँ 'ग़ालिब' का स्थान अप्रतिम है। सूफियाना तबीयत के ग़ालिब अपनी पहले इतिखाब 'गुलेराना' की प्रस्तावना में

उर्दू और फारसी शायरी के पढ़ने वालों को यह जताना चाहते थे कि वो उन दोनों तरह की शायरियों को एक ही दर्जे कलाम के दो पहलू समझें। यानी वो अपनी उर्दू और फारसी शायरी को एक ही बाग़ के दो दरवाजे समझते थे। यहाँ यह ध्यान देने की बात है कि कुछ ही सालों के बाद उर्दू दीवान की प्रस्तावना में उन्होंने मुख्तलिफ़ लहज़ा अख़्तियार किया और फारसी भाषा में की गई शायरी को तरजीह देने लगे। उस समय हिंदुस्तान में फारसी उच्च वर्ग के लोगों की भाषा थी। ग़ालिब उन शायरों में हैं जो सच्चाई को ढूँढ़ते बहुत हैं, मगर हासिल करने के एहसास से परे रह जाते हैं। जिंदगी के नामुकम्मल, अपूर्ण होने के शदीद एहसास ग़ालिब की शायरी में है—

किया है तर्क दुनिया काहिली से

हमें हासिल नहीं बेहासिली से

यही कारण है कि ग़ालिब आधुनिक मनुष्य को बहुत प्रभावित करते हैं—

जहाँ तेरा नक्शे-कदम देखते हैं

खियाबां-खियाबां इरम देखते हैं,

या यह शेर—

दिल ही तो है, न संगो-खिशत दर्द से भर न आए क्यों

रोएँगे हम हजार बार, कोई हमें सताए क्या



## मोमिन

पृष्ठ : 140

मूल्य : रु. 145/-

मुहम्मद मोमिन ख़ाँ मूलतः कश्मीर के थे, पर वे दिल्ली में आ बसे थे। उस समय शाह आलम बादशाह थे और उनके पितामह शाही हकीमों में नियत हो गए। अंग्रेजी राज्य में उन्हें

पेंशन मिलने लगी, जो बाद में मोमिन को भी मिलने लगी थी। इनका जन्म दिल्ली में सन् 1800 ई. में दरियागंज, दिल्ली के कूचा चेलों में हुआ था। मोमिन खॉं ने शिक्षा शाह अब्दुल कादिर खॉं की देख-रेख में हासिल की। वह अत्यंत विलक्षण बुद्धि के बालक थे। उनकी याददाश्त बहुत तेज थी। अपने पुरखों को अनुसरण करते हुए वे भी दिल्ली के नामचीन हकीम हुए। साथ ही वे महान ज्योतिषी भी हुए। उनके ज्योतिषी का आलम यह था कि उन्होंने अपनी मृत्यु तक की भविष्यवाणी कर दी थी। वे शतरंज की पेचीदगियों को न सिर्फ समझते थे, बल्कि अच्छे खिलाड़ी भी हुए। वे अपने बचपन के शौक-शायरी को उरुज तक ले गए। शुरुआती दौर में शाह नसीर से सलाह जरूर लेते थे, लेकिन बाद में खुद ही अपनी ग़ज़ल को सुधार लेते थे। उनकी कल्पनाशक्ति अत्यंत कोमल थी। उन्होंने अपनी शायरी में उच्च स्तर की उपमाओं का प्रयोग किया। ग़ालिब के समकालीन रहे मोमिन का निधन महज 51 साल की उम्र में दिल्ली में ही हो गया।

### तुम मेरे पास होते हो गोया जब कोई दूसरा नहीं होता

बहुत कम लोगों को मालूम होगा कि यह शेर सुन ग़ालिब ने कहा था कि इस शेर पर मैं अपना दीवान तक न्यौछावर कर सकता हूँ।



### दाग

पृष्ठ : 162

मूल्य : रु. 145/-

दाग देहलवी को ग़ालिब और जौक जैसे उस्तादों की शागिर्दी और संगत मिली थी, लेकिन उनकी ग़ज़लों और शायरी में इन अजीम शायरों से एक अलग छाप दिखती है। उनकी उम्र जब 12 साल की थी, माँ ने बहादुरशाह ज़फ़र के बेटे मिर्जा फखरू से निकाह कर लिया था। इस घटना से उन्हें एक गम ताउम्र भले रहा हो, लेकिन ये उनकी जिंदगी के अच्छे दिन थे। उन्हें शानदार तहजीब और तालीम मिली। ग़ालिब, मोमिन, जौक, शेफ़ता जैसे उस्ताद उन्हें उर्दू और ग़ज़ल सिखाते थे। छोटी-सी उम्र में ही अपनी शायरी के हुनर से उन्होंने बड़े-बड़े उस्तादों को चौंका दिया था। इतना ज्यादा कि उनके लिए मिर्जा ग़ालिब को भी यह कहना पड़ा कि 'दाग ने न सिर्फ भाषा को पढ़ा, बल्कि उसे तालीम भी दी।'

उच्च कोटि के शायर के रूप में उनकी ख्याति थी। उनका कलाम उर्दू अदब के लिए किसी रौशन मीनार से कम नहीं थी। दिल्ली की खास जबान और अपने अशआर के चुटीलेपन के कारण 'दाग' को भारतीय शायरों की पहली पंक्ति में गिना जाता है। उनके शार्गिदों के फेहरिस्त में बेखुद देहलवी डॉक्टर इक़बाल जैसे शायर रहे हैं। उनकी

शायरी की खूबसूरती उनकी जबान और उनके अंदाजे-बयों में है।

तुम्हारी बज़्म में देखा न हमने दाग़ सा कोई  
जो सौ आए, तो क्या आए, हजार आए, तो क्या आए  
और

मौत का मुझको न खटका, शबे-हिज़्रां होता।  
मेरे दरवाज़े अगर आपका दरबां होता।।  
ख़याले यार ये कहता है मुझसे खिल्वत में  
औ तेरा रफ़ीक़ बता और कौन है, मैं हूँ।।



### इक़बाल

पृष्ठ : 128

मूल्य : रु. 125/-

अल्लामा इक़बाल के नाम से मशहूर यह शेर 'खुदी को कर बुलंद इतना कि हर तकदीर से पहले, खुदा बंदे से खुद पूछे, बता तेरी रजा क्या है' अपनी कहानी खुद कहता है। उन्हें शायरी का शौक स्कूली जीवन में ही हो गया था। अपनी रचनाओं को नामी शायर उस्ताद दाग़ के पास भेजा करते थे। सन् 1899 में लाहौर के ओरिएंटल कॉलेज से उन्होंने दर्शनशास्त्र में एम.ए. किया था। उनकी शायरी की चर्चा उसी समय से पूरे भारत में होने लगी थी। इक़बाल को ग़ज़लों की तरह नज़्में लिखने में भी महारत हासिल थी।

इक़बाल की शायरी में रस, रंग, कल्पना और अनुभूतियों के ऐसे शब्द-चित्र मिलते हैं, जो संसार की समृद्ध भाषाओं की महान काव्य-कृतियों में ही नजर आते हैं। बड़ी सादगी से बड़ी गहरी बात कह जाना उनकी विशेषता है।

मशहूर शायरों की नुमाइंदा शायरी शृंखला में इक़बाल इकलौते शायर हैं जिनकी नज़्मों की संख्या ग़ज़लों से अधिक है। यह सही है कि अल्लामा इक़बाल की नज़्मों उनकी ग़ज़लों पर भारी हैं। यहाँ पर शार्ही की कुछ पंक्तियाँ मुलाहिजा हों—

किया मैंने उस खाकदों से किनारा  
जहाँ रिज़्शक शका नाम है आब ओ दाना  
बयाबाँ शकी ख़िल्वत खुश आती है मुझको  
अज़ल से है फितरत मेरी राहबाना

हर भाषा के साहित्य में कोई एक विधा मुखर होती है, उसी तरह उर्दू अदब में शायरी का स्थान है। उर्दू लिपि न होने पर भी ग़ज़लों की लोकप्रियता का आलम यह है कि वह हिंदी कविता से ज्यादा लोकप्रिय है और ज्यादा बोली-समझी जाती है। ओम प्रकाश शर्मा ने बड़ी मेहनत कर शायरों की तमाम लोकप्रिय ग़ज़लों को इकट्ठा किया है।



समीक्षक : दीपेश

लेखक : अरुण अर्णव खरे

प्रकाशक : एपीएन पब्लिकेशंस,

नई दिल्ली।

पृष्ठ : 130

मूल्य : रु. 180/-

## कोचिंग

### @ कोटा

कोटा शहर का नाम सुनते ही हमारे मस्तिष्क में बहुमंजिला इमारतों पर टँगे कोचिंग संस्थानों के बड़े-बड़े होर्डिंग्स, इंजीनियर और डॉक्टर बनने की महत्वाकांक्षा लिए हजारों-लाखों विद्यार्थियों की भीड़, असफल छात्रों की आत्महत्या की खबरें आदि-आदि चित्र उभरने लगते हैं। देश के विभिन्न प्रांतों से छात्र-छात्राएँ जब कोटा पहुँचते हैं तो उनके कंधों पर पूरे समाज के सपने का बोझ होता है। एक साथ सैकड़ों नजरें उन पर टिकी होती हैं। अरुण अर्णव खरे के उपन्यास 'कोचिंग@कोटा' का समीर भी उन्हीं छात्रों में से एक है। वह भी अन्य छात्रों की भाँति अपने पिता का सपना पूरा करने के लिए कोटा आता है।

उपन्यास का कथानक बहुत ही सहजता से आगे बढ़ता है। ग्लोबल कोचिंग इंस्टीट्यूट में समीर की मुलाकात उसकी सहपाठी चित्रा से होती है और दोनों दोस्त बन जाते हैं। दोनों ही 11वीं कक्षा के विद्यार्थी हैं। चित्रा कक्षा में अब्बल आने वाली लड़की है, जबकि समीर एक औसत छात्र है। फिर भी दोनों की दोस्ती गाढ़ी होती जाती है, साथ ही समीर का रैंक सुधरने लगता है। इस उम्र में विद्यार्थियों के पास बुरी संगति में पढ़ने की संभावना अधिक होती है। एक क्षण के लिए भी यदि लक्ष्य आँखों से ओझल हुआ कि वह हमेशा के लिए गायब ही हो जाता है। उसी कोचिंग में पढ़ने वाले अरविंद और संकेत के साथ भी यही होता है।

उपन्यास में संयोगों की झड़ी लगी हुई है। विद्यार्थियों से मोटी फीस वसूलने वाले कोचिंग संस्थानों के साथ-साथ मकान मालिकों की भी अग्रणी भूमिका है, लेकिन लेखक ने यहाँ एक बड़ा ही सुंदर-सा संयोग दिखाया है। समीर का मकान मालिक उसकी देखभाल माता-पिता की तरह करता है और वह भी उन्हें उसी रूप में सम्मान करता है। दूसरा संयोग है चित्रा की दोस्ती। जिस परीक्षा में एक अंक से सैकड़ों रैंक का अंतर आ जाता है, उसी की तैयारी करने वाली एक लड़की अपने दोस्त की सहायता इस मनोयोग से करती है कि वह उससे भी आगे बढ़ जाता है। तीसरा संयोग है, समीर का अति संस्कारी होना। समीर एक आदर्श छात्र है, जो कोटा केवल और केवल पढ़ने के लिए आया है। वह अपने ऊपर लादे गए बोझ से इतना भयभीत हो जाता है कि चित्राकारी करना भी छोड़ देता है, जो कि उसकी सबसे अच्छी अभिरुचियों में शामिल है। इन सबके बावजूद

समीर इंजीनियरिंग की दोनों ही परीक्षाओं में सफलता हासिल करता है। चित्रा भी वैसी ही लड़की है—उसे न तो सिनेमा देखने में रुचि है और न ही कहीं घूमने-फिरने में। कुल मिलाकर यह कि यदि इंजीनियर और डॉक्टर बनना है तो एक मशीन की-सी जिंदगी गुजारनी पड़ेगी।

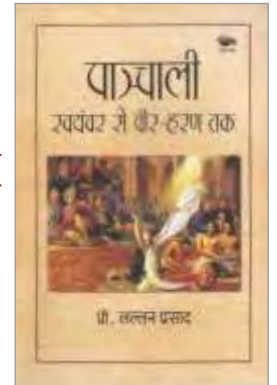
उपन्यास का अंत बड़ा ही नाटकीय अंदाज में होता है। समीर का आई.आई.टी. के लिए चयन हो गया है, लेकिन चित्रा एक दुर्घटना के कारण परीक्षा में शामिल नहीं हो पाती है। अपनी मम्मी और बहन के साथ समीर जब चित्रा के घर, जो मध्य प्रदेश में है, पहुँचता है तो उसे पता चलता है कि परीक्षा के दिन घटी दुर्घटना में चित्रा गंभीर रूप से चोटिल हो गई तथा उनके पिता का देहांत हो गया। समीर तय करता है कि वह चित्रा को इस हालत में अकेला छोड़कर आई.आई.टी. में दाखिला नहीं लेगा और इस फैसले पर उनके घरवालों को रती भर भी आपत्ति नहीं है।

प्रतियोगी परीक्षा की तैयारी कर रहे छात्र और उनके अभिभावकों के लिए यह पुस्तक एक नया विकल्प उपलब्ध कराती है। यदि एक-दो वर्षों के लिए मन को साध लिया जाए और पूरी एकाग्रता से पढ़ाई की जाए तो बड़ी-से-बड़ी सफलता प्राप्त की जा सकती है। समीर जैसे औसत छात्र का कड़ी मेहनत और लगन द्वारा आई.आई.टी. की परीक्षा उत्तीर्ण करना यह दर्शाता है कि प्रतियोगी परीक्षाओं में सफलता हेतु मेधावी होने से अधिक महत्वपूर्ण नियमित व ईमानदारीपूर्वक अध्ययन करना है।

## पाञ्चाली : स्वयंवर से चीर-हरण तक

आमतौर पर पौराणिक स्त्री पात्रों में द्रौपदी को सम्मानित भाव से नहीं देखा जाता है। वजह स्पष्ट है कि वह पाँच पतियों की सामूहिक पत्नी थी। स्त्री की यह स्थिति परंपराओं और धर्मभीरु व्यवस्था के लिए असहज है, परंतु वही समाज अपनी खुशियों की खातिर परंपराओं और रीतियों में संशोधन भी करता रहता है। महाभारत की कथा इस प्रवृत्ति का सशक्त प्रमाण है।

महाभारत कथा में द्रौपदी एक ऐसी शख्सियत के रूप में चित्रित हुई है जो न सिर्फ पुरुष व्यवस्था की साजिशों और शोषण की शिकार है, बल्कि वह उसका समय-समय पर प्रतिवाद भी करती हुई नजर आती है। द्रौपदी अनुपम सौंदर्य, अद्वितीय देह शौष्ठव की अधिकारिणी होने के साथ-साथ विद्रोह चेतनशील भी है। उसका यही चारित्रिक बल



समीक्षक : डॉ. नामदेव

लेखक : प्रो. लल्लन प्रसाद

प्रकाशक : वितस्ता पब्लिशिंग

प्राइवेट लिमिटेड, नई दिल्ली

पृष्ठ : 86

मूल्य : रु. 250/-

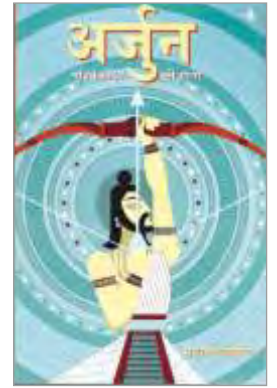
उसको अनुठा बनाता है। हालाँकि द्रौपदी में क्षत्राणी होने का अहम भी मौजूद है, क्योंकि महाभारत के कथा क्रम में उसके ऐसे अनेक संबोधन देखने को मिलते हैं। इसके बावजूद पौराणिक स्त्री चरित्रों में द्रौपदी कहीं-न-कहीं अपनी स्त्री चेतना से लैस या अपने अधिकारों के प्रति सजग भी दिखती है। इन सब प्रवृत्तियों को ध्यान में रखते हुए प्रोफेसर लल्लन प्रसाद ने 'पाञ्चाली : स्वयंवर से चौर-हरण तक' शीर्षक से खंडकाव्य लिखा है जो कि पाँच सर्गों में विभाजित है—परिणय, प्रणय, प्रशस्ति, प्रमाद, परिणति। इनमें महाभारत की मुख्य घटनाओं के मद्देनजर यानी महाभारत की मुख्य घटनाओं के बीच द्रौपदी एक मुख्य आधार बिंदु के रूप में प्रस्तुत हुई है।

महाभारत की प्रमुख घटनाओं पर आधारित इस खंडकाव्य में सरल भाषा के साथ-साथ कथाओं की सहज सरल प्रस्तुति भी एक आकर्षण का केंद्र है। सबसे बड़ी बात है, अनेक प्रसंगों के बीच द्रौपदी के चरित्र को मजबूती से उभारना, विकसित करना जिसके कारण पाञ्चाली एक सामान्य स्त्री की परिभाषाओं से ऊपर उठ जाती है। हर सुंदर और योग्य नवयौवना के मन में सामान्यतः एक समर्थ पति पाने की लालसा होती है। द्रौपदी भी वैसे ही मनोभावों की एक स्त्री है जिसका स्वयंवर होता। अज्ञातवास की सबसे बड़ी उपलब्धि के रूप में उभरती है द्रौपदी जिसको बिना देखे कुंती (सास) वस्तु समझकर पाँचों भाइयों को आपस में बाँट लेने के लिए कहती है। 'दूधो नहाओ पूतो फलो' के आशीर्वाद से नवाजती है। यहाँ द्रौपदी लोक-लज्जा और मर्यादा की चिंता करते हुए एक संजीवा स्त्री के रूप में उतरती है। वह आत्मसंघर्ष की मुद्रा में सोचती है कि पाँच पुरुष एक स्त्री के साथ रह पाएँगे, कहीं उसके चक्कर में एक-दूसरे के दुश्मन तो नहीं बन जाएँगे! क्या वह पिता के घर वापस लौट जाए! लेकिन वह इतनी कमजोर नहीं है, कुंती (सास) की सलाह का मान रखेगी। पाँचों पतियों को एक कमल की अनेक पंखुड़ियों की तरह जोड़कर रखेगी। वास्तव में पारिवारिक एकता और आपसी प्रेम की एक नई मिसाल पेश करती है पाञ्चाली। एक वर्ष के अज्ञातवास में अर्जुन नाग कन्या उलकी का प्रेम निवेदन स्वीकार करता है, राजकुमारी चित्रांगदा से परिणय करता है, फिर सुभद्रा पर आसक्त हो उससे विवाह कर लेता है। इस घटना के बाद भी द्रौपदी ईर्ष्यालु नहीं बनती, अपितु सुभद्रा को अपनी सौत न समझ उसे छोटी बहन का प्यार देती है। पाञ्चाली की दो गलतियाँ एक अपमान और दूसरा परिहास-तिरस्कार आगे चलकर पुरुष अहम् पर भारी पड़ते हैं। स्वयंवर के समय दुर्योधन और कर्ण का अपमान, फिर अपने महल में दुर्योधन को अंधे का बेटा कहकर परिहास करना, जहाँ उसके अहंकार को लक्षित करते हैं, वहीं उसके लिए संकट भी बन जाते हैं। धूत क्रीड़ा (जुए का खेल) में युधिष्ठिर द्वारा अंतिम दाँव के रूप में द्रौपदी को हार जाने पर दुर्योधन का यह कहना कि वह पाँच पतियों की वेश्या को अपनी रखैल भी नहीं, बल्कि दासी बनाकर रखेगा। कक्ष में बुलाने गए सारथी से द्रौपदी यह जानकर कि पासा फेंकने वाला शकुनि था तो उसकी चेतना में यह कौंध गया कि उसके

भोले-भाले धर्मभीरु ज्येष्ठ पति को फँसाया गया है। दुःशासन द्वारा निर्दयता से अर्धनग्न अवस्था में पाञ्चाली को घसीटते हुए सभा में लाकर पटक दिया गया। जहाँ उपस्थित सभी संबंधियों और गुरुजनों से वह सवाल करती है कि यदि उनकी माँ, बहनों, बहुओं के साथ भी ऐसा होता तो क्या वे इसी तरह खामोश रहते। क्या स्त्री पशु से भी गई-गुजरी है जिसको कोई भी जब चाहे रौंद दे।

द्रौपदी के इस संघर्ष, समर्पण और त्रासदी के प्रसंगों पर आधारित यह खंडकाव्य पठनीय और विचारणीय है तथा मिथकीय आख्यानों में समाए मानव इतिहास के विकास क्रम में मौजूद सभ्यता, संस्कृति की झलक भी दिखती है। वैसे भी मिथकीय चरित्रों के माध्यम से संस्कृति, परंपराओं के गंभीर सवाल उठाने आसान हो जाते हैं, क्योंकि उनको लेकर बौद्धिक चिंतन और कल्पना की बंदिश नहीं होती है। द्रौपदी (पाञ्चाली) को भी इसी संदर्भ में प्रस्तुत किया गया है।

## अर्जुन : पांडव योद्धा की गाथा



समीक्षक : डॉ. नामदेव

लेखिका : अनुजा चंद्रमौली

अनुवादक : आशुतोष गर्ग

प्रकाशक : मंजुल पब्लिशिंग हाउस,

भोपाल (मध्य प्रदेश)।

पृष्ठ : 262

मूल्य : रु. 275/-

यह पुस्तक रोचक लोक प्रचलित पौराणिक आख्यान है, जिसमें महाभारत के कथा नायक अर्जुन के महान योद्धा बनने की अनेक कथाओं के साथ-साथ अर्जुन के जीवन के अनेक पक्षों का चित्रण सामने आता है। हालाँकि लेखिका ने अर्जुन के मार्फत महाभारत की अनेक कथाओं को भी मौलिक रूप में प्रस्तुत कर रोमांच और रुचि को बढ़ा दिया है।

उपन्यास के शुरुआत में प्राचीन भारत में मौजूद उन

परंपराओं का उल्लेख किया गया है जिनको आज के दौर में अनैतिक करार दे दिया गया है, जिससे इस धारणा की पुष्टि होती है कि नैतिकता, सदाचार, पाप-पुण्य, झूठ-सच, छल-कपट, शील-अश्लील के सवाल, समयानुसार परिवर्तनशील होते हैं, स्थायी रहते हुए भी इनका स्वरूप और आचरण बदलता रहता है। कुंती को पुत्र प्राप्ति हेतु दूसरे पुरुष से समागम के संदर्भ में प्रोत्साहित करते हुए पति पांडु कहता है कि पुरातन काल में स्त्रियों को घूमने-फिरने और अनेक पुरुषों के साथ संसर्ग करने की अनुमति थी। वह विवाहित होते हुए भी अन्य पुरुषों के साथ संपर्क कर सकती थी। उन दिनों मनुष्य शारीरिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए स्वतंत्र था जिसको बुरा नहीं समझा जाता था। ये सब धर्म के आरंभिक नियमों के अनुकूल,

प्राकृतिक और स्वस्थ माना जाता था। कालांतर में ऋषि श्वेतकेतु द्वारा नैतिकता एवं लैंगिकता पर नए नियमों के बनाए जाने के उपरांत स्थिति में तेजी से परिवर्तन हुआ।

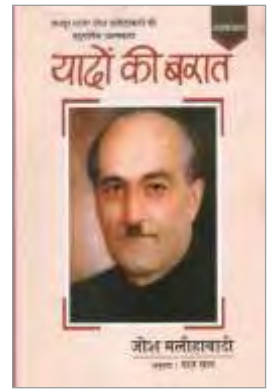
ऐसे ही विचारों की घटनाओं के बीच अर्जुन के जीवन से संबंधित रोचक साहसिक कारनामों से सराबोर कथाओं में अर्जुन के बहुमुखी चरित्र का विकास हुआ है, जिसमें वह एक आदर्श बेटा, आदर्श भाई, आदर्श पति, समर्पित प्रेमी, संवेदनशील पिता, परमवीर योद्धा, समर्पित और संजीवा व्यक्ति के रूप में सामने आता है। इसी कारण महाभारत में और यहाँ तक कि पाँचों भाइयों में भी सबसे ज्यादा बुद्धिमान, साहसी, तेजस्वी, समस्त कलाओं का स्वामी, अस्त्र-शस्त्र और युद्ध की सभी कलाओं में दक्ष, अद्वितीय धनुर्धर के रूप में प्रभाव छोड़ता है। अर्जुन की महानता सिर्फ इसमें नहीं है कि वह इंद्र पुत्र है या अनेक दिव्यास्त्रों का स्वामी है जिनको उसने अत्यंत कठिन तपस्या से हासिल किया था, बल्कि वह संवेदनशील, दयालु और सदाचारी भी था। द्रोपदी को लेकर पाँचों भाइयों में यह नियम बनाया गया था कि जिस समय वह जिसके साथ रहेगी, उस समय दूसरा कोई भी भाई उनकी निजता भंग नहीं करेगा, न उनके बारे में पूछेगा। एक दिन एक गरीब ब्राह्मण द्वारा अर्जुन से मदद के लिए गुहार लगाने पर अर्जुन को धर्म की रक्षा के लिए युधिष्ठिर-पांचाली के शयन कक्ष में शस्त्र लेने जाना पड़ा। चोरों से ब्राह्मण की गाय छुड़ाकर ब्राह्मण को लौटा दी और तय नियमानुसार बनवास में निकल गया। क्योंकि उसने शयन कक्ष में जाकर निजता का उल्लंघन किया था। युधिष्ठिर द्वारा रोके जाने पर वह कहता है, “भैया मुझे अपनी निजी सुविधा के लिए धर्म को तोड़ना-मरोड़ना शोभा नहीं देता। हमने इन नियमों को किसी विशेष उद्देश्य से बनाया था। हमें इनका पालन करना चाहिए। मैं 12 वर्ष के लिए वन में जा रहा हूँ और अवधि पूरी होने के बाद ही लौटूँगा। कृपया मेरे निर्णयों को बदलने का प्रयास मत कीजिए।” अर्जुन और कृष्ण की मित्रता न सिर्फ एक मिसाल है, बल्कि धर्म की स्थापना के लिए कृष्ण और अर्जुन की नारायण और नर के रूप में दोस्ती हुई थी। इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए अर्जुन कृष्ण का चयन करता है और यह विश्वास व्यक्त करता है कि कृष्ण के रहने से वह युद्ध तो पहले ही जीत चुका है। लेकिन इतना होने के बाद भी अर्जुन में अहंकार नहीं है, वह संवेदनशील है। युद्ध से एक दिन पहले ही वह अपने प्रिय पितामह, गुरु और सगे-संबंधियों पर आक्रमण करने की बजाय भिक्षा माँगकर जीवनयापन करना उचित समझता है जिस पर कृष्ण उसे समझा-बुझाकर युद्ध के लिए तैयार करते हैं। अर्जुन एक संवेदनशील पिता भी है जो अपने प्रिय पुत्र अभिमन्यु की हत्या के बाद प्रतिशोध की ज्वाला में निरंतर जलता रहता है। पुत्र विक्षोभ उसका पीछा नहीं छोड़ता।

यहाँ अर्जुन सिर्फ एक दिव्य मनुष्य नहीं, बल्कि एक सांसारिक मनुष्य की तरह जीवन के उतार-चढ़ाव के साथ दिखता है। महाभारत

का युद्ध जीतने के बाद भी अभिमन्यु की मृत्यु का दुख अर्जुन के मन में पीड़ा के रूप में स्थायी भाव से बैठ गया था। अर्जुन न सिर्फ एक संवेदनशील पिता था, बल्कि एक प्रिय, प्रतिष्ठित और आदर्श योग्य शिष्य भी था तभी तो द्रोणाचार्य ने कहा था कि इस संसार में अर्जुन जैसा योद्धा न कोई है और न भविष्य में कभी होगा। प्रस्तुत कथा किताब में अर्जुन के माध्यम से महाभारत की कथा को, देवलोक की दैवीय आभा और सांसारिक जीवन के व्यावहारिक प्रसंगों के बीच कथा का ताना-बाना बुनकर, मानव जीवन में सत्य, संघर्ष, न्याय के लिए सदैव तत्पर रहने की चेतना का संचार किया गया है। इस तरह अर्जुन एक स्वाभाविक मनुष्य के रूप में भी सामने आता है जो अजेय योद्धा है, सिर्फ लड़ता ही नहीं है, जीवन को जीता भी है। अर्जुन जैसे महान मिथकीय चरित्र के माध्यम से एक जुझारू सभ्यता के जिंदा होने और उसके निरंतर आगे बढ़ते रहने की गाथा का प्रतीक है ‘अर्जुन : पांडव योद्धा की गाथा’।

## यादों की बरात

जोश मलीहाबादी (1898-1982) 20वीं सदी के भारतीय उपमहाद्वीप के सबसे अजीम और चर्चित उर्दू शायरों में एक थे। स्थापित सत्ता और धिसे-पिटे मूल्यों के खिलाफ अपने बेबाक, ओजस्वी लेखन की वजह से उन्हें ‘शायरे-इंक्लाब’ कहा जाता है। उनकी करीब 20 किताबें प्रकाशित हुई हैं। हजार से ज्यादा रुबाइयाँ और एक लाख से ज्यादा शेर उन्होंने कलमबंद किए। लेकिन उनकी शायद सबसे चर्चित किताब है उनकी आत्मकथा ‘यादों की बरात’।



समीक्षक : राजेंद्र भट्ट

लेखक : जोश मलीहाबादी

अनुवादक : नाज खान

प्रकाशक : संवाद प्रकाशन,

मेरठ (उत्तर प्रदेश)।

पृष्ठ : 510

मूल्य : रु. 400/-

आत्मकथा की खूबियाँ होती हैं—व्यक्तित्व को बिना किसी दिखावे या नकली मुलम्मे के, एकदम स्याह-सफेद दिखाना और फिर ऐसा लगे कि ये तो हम सबकी यानी इनसान की कहानी है, दूसरी बात, व्यक्ति के जमाने, उसके आस-पास के समाज की बड़ी तस्वीर सामने ले आना, तीसरी और बड़ी बात कि पाठकों को ज्यादा उदार, ज्यादा मानवीय, भाषा और भावनात्मक रूप से ज्यादा समृद्ध बनाना। यह आत्मकथा तीनों मानदंडों पर एक शानदार किताब नजर आती है।

शब्बीरहसन खान, जिनका कवि-नाम 'जोश मलीहाबादी' है, लखनऊ के पास मलीहाबाद के एक बड़े, पठान जर्मीदार परिवार में पैदा हुए, पले-बढ़े। यहाँ बेशुमार दौलत, ऐशो-आराम था। किसानों के साथ बेरहमी और उनका शोषण भी था, दरियादिली और हमदर्दी के वाक्ये भी थे। सामंती जाहिली भी थी, शोरो-शायरी की तमीज भी थी। शब्बीर का व्यक्तित्व ऐसे ही माहौल में ढला। एकदम तैश में आकर उन्होंने भी गरीबों से बदसलूकियाँ कीं। लेकिन बुनियादी तौर पर वह बेहद नर्मदिल, सच्चे और हमदर्द इन्सान थे। साथ ही निडर और बेबाक भी थे। उनके ये गुण उनकी शायरी और काम-धंधे से जुड़े, भावनाओं में बहकर लिए गए फैसलों में नजर आते हैं। इस आत्मकथा में वह सामंती दौर, रियाया के दुख-दर्द और जोश साहब की भावुकता और ईमानदार बेबाकी बखूबी नजर आते हैं।

जोश साहब मर्जी के मालिक थे और ठंडे दिमाग की जगह दिल से काम करते थे। हाकिमों, धर्म-संस्कृति के ठेकेदारों की परवाह किए बिना लिखते थे और जमकर सुनाते थे। आत्मा को रास न आए तो अच्छी-भली नौकरियाँ छोड़ सकते थे। एक जल्दबाज फैसले में, नेहरू जी द्वारा इतनी इज्जत दिए जाने, सम्मानित उर्दू पत्रिका 'आजकल' का संपादक बनाए जाने के बावजूद पाकिस्तान चले गए और फिर जिंदगी के आखिरी 24 साल पछताते रहे।

लेकिन इस किताब की खूबी है जोश साहब की बेबाक ईमानदारी। उन्होंने अपनी कमियाँ छिपाई नहीं हैं, बल्कि खूबियाँ कम बताई हैं। अपनी शायरी-पुरस्कारों की तारीफ का जो भद्दापन कई लोगों में होता है, उससे भी वह मुक्त हैं। लेकिन पत्नी, मित्रजनों और अन्य लोगों की तारीफ, आत्मीयता की जो बातें बयान की हैं, उनसे जोश साहब का विराट वट-वृक्ष सा कद उभरता है।

इस पुस्तक की भाषा अद्भुत है। हमारी देशज हिंदुस्तानी में शब्दों का, अर्थ-छटाओं का कितना बड़ा खजाना है, शब्द कैसे पूरा माहौल चित्रित कर सकते हैं, कोई इस किताब से सीखे। खान-पान, बनाव-सिंगार, फलों-पकवानों, मेलों-त्योहारों, मौसमों की रूमानियत का जिक्र हो, या फिर मानवीय भावनाओं, अनुराग-विराग की भावनाएँ हों—बिना नकलीपन के बड़ी सादगी, लेकिन शब्दों की अद्भुत विविधता से जोश साहब आँखों के आगे तस्वीर, कानों में मिश्री घोल देते हैं और दिल तक पहुँच जाते हैं। सच में, जोश साहब हमें भाषा और भाव दोनों स्तर पर समृद्ध बनाते हैं।

इतनी बड़ी, और हर पृष्ठ पर भाषा-भाव के सजीव वर्णनों के बीच, बहुत कंजूसी से केवल दो उदाहरण प्रस्तुत हैं। अपने अजीज नेहरू जी के बारे में जोश लिखते हैं—“वह इस दुनिया के एक ऐसे

जिंदा ताजमहल थे, जिसको अवध की सलोनी शाम और बनारस की खूबसूरत सुबह मिलाकर इलाहाबाद के गंगा-जमुनी संगम पर छेनियों से तराशकर तामीर किया गया था। उनका वजूद हिंदुस्तान का गुरुर था।...”

इनसानियत का जोश साहब का विजन देखिए, “मैं देखता हूँ कि दुनिया एक ही जंजीर में जकड़े हुए और एक ही किस्म की मिट्टी से बने अलग-अलग शक्तों के इन्सानों की है, जिनमें सिर्फ नाम और जिस्मों का फर्क है। हकीकत सबकी एक है। इस कायनात में गैरियत का कहीं कोई नाम ही नहीं है...ऐसे में, इस हकीकत को समझते हुए अगर मैं किसी से नफरत करूँगा या दुश्मनी करूँगा तो इसके सिवा और कोई मायने हो ही नहीं सकते कि मैं खुद अपनी जात से नफरत या दुश्मनी कर रहा हूँ।”

## महात्मा के महात्मा : श्रीमद् राजचंद्र और महात्मा गांधी



यह पुस्तक श्रीमद् राजचंद्र और गांधी के बीच गहरे रिश्ते को समझने की एक मुकम्मल तस्वीर मुहैया कराती है। पुस्तक की भूमिका में सुज्ञान मोदी ने लिखा भी है कि 'इस पुस्तक को प्रकाशित करने का उद्देश्य यह है कि गांधी जी के बारे में सामान्य जिज्ञासुओं को भी उनके आध्यात्मिक पथ-प्रदर्शक श्रीमद् राजचंद्र जी के

बारे में जानकारी मिले। और अन्याय देश-विदेश में फैले श्रीमद् राजचंद्र जी के समर्पित लाखों साधकों-मुमुक्षुओं को भी गांधी और श्रीमद् राजचंद्र के आपसी संबंधों के बारे में जानने को मिले।' यह पुस्तक छह भागों में विभाजित है। गांधी अपने जीवन में तीन लोगों से ज्यादा प्रभावित थे, वे थे—टॉलस्टॉय, जॉन रस्किन और राजचंद्र भाई। गांधी ने अपने जीवन में इनसे संबंधित खूब किताबें पढ़ीं तथा शिक्षा भी ग्रहण की। गांधी राजचंद्र को अपना गुरु मानते थे और जब कभी वह (गांधी) धर्म आदि के समस्याओं में खुद को पाते तो वह उनका सहारा लेते। गांधी ने संघर्षरत जीवन के अतिरिक्त भारत के स्वतंत्रता आंदोलन तथा धर्म के प्रति जातिगत भेदभाव, संस्कृति आदि के लिए भी लड़ाइयाँ लड़ीं। देखें तो आधुनिक सभ्यता की बुराइयों का विरोध जहाँ रस्किन ने 'मेरा इंग्लैंड' में तो

समीक्षक : सपना तिवारी

लेखक : सुज्ञान मोदी

प्रकाशक : किताबघर,  
जोधपुर (राजस्थान)।

पृष्ठ : 318

मूल्य : रु. 400/-

गांधी ने 'हिंद स्वराज' में किया। वहीं रस्किन से प्रभावित होकर गांधी एक वर्गहीन समाज का निर्माण भी करना चाहते थे।

जीवन में कई प्रश्न अबूझ पहली बन जाते हैं और मनुष्य ताउम्र उन प्रश्नों से जूझता-उलझता रहता है। गांधी भी एक बार धर्म-विशेष को लेकर प्रश्नों से जूझ रहे थे। वह द्वंद्व में थे कि उन्हें ईसाई धर्म अपनाना चाहिए या नहीं। वह ईसा को एक त्यागी, महात्मा और दैवी शिक्षक के रूप में ही मानते थे, उन्हें दूसरे रूप में स्वीकार करना उनके लिए सहज न था। तभी इन प्रश्नों का जवाब वह राजचंद्र भाई से पूछते हैं। वह हिंदू धर्म का गहरा अध्ययन करने की सलाह देते हैं और कहते हैं कि 'हिंदू धर्म में जो सूक्ष्म और गूढ़ विचार हैं, आत्मा का निरीक्षण है, दया है, वह दूसरे धर्मों में नहीं है।' ब्रह्मकर्मियों की संगति में उन्हें वैदिक धर्म से लेकर बौद्ध और ईसाई धर्म तक में गहरी रुचि उत्पन्न होती है, लेकिन धर्म और अध्यात्म की भारतीय परंपरा के विषय में उनकी जिज्ञासाओं का समाधान तभी हो पाता है जब 1891 में वापस बंबई पहुँचने के दिन ही गांधी की पहली भेंट 24 वर्षीय साधक श्रीमद् राजचंद्र से होती है। श्रीमद् के जीवनसिद्धि का आधार 'प्रसंगों में न उलझकर पुरुषार्थ की प्रेरणा' लेने से है। महात्मा गांधी के राजनीतिक संघर्षों की बुनियाद भी आध्यात्मिकता के धरातल पर ही पड़ी थी। इसलिए उनकी आध्यात्मिक परिपक्वता की यात्रा को समझे बिना उनके व्यक्तित्व और कर्तृत्व को समग्रता में नहीं समझा जा सकता। वे उस दौर के अन्य महत्वाकांक्षी युवकों की भाँति ही बैरिस्टर बनने के लिए लंदन जाते हैं। 21 वर्ष की आयु में वहीं पर पहली बार उन्हें भगवद्गीता का अंग्रेजी अनुवाद पढ़ने को मिलता है। अहमदाबाद में 21 नवंबर, 1915 को श्रीमद् राजचंद्र की जन्म-वार्षिकी पर अपने भाषण में गांधी कहते हैं कि उनके जीवन पर राजचंद्र जी का गहरा प्रभाव था और वह समारोह में उपस्थित सभी को उनकी कृतियों के अध्ययन के लिए जागरूक करते हैं और बताते हैं कि इसके अध्ययन से लोगों के कष्ट दूर होंगे। सत्संगति और आध्यात्मिक मार्गदर्शन का यह सिलसिला आने वाले 10 वर्षों तक चलता है, जब तक कि श्रीमद् राजचंद्र की मृत्यु नहीं हो जाती। राजचंद्र को आठ वर्ष की उम्र में ही आत्मज्ञान की प्राप्ति हो गई थी। इन्होंने आत्मसिद्धि पर अत्यधिक बल दिया। मोहनदास गांधी के महात्मा बनने का मार्ग वास्तव में इसी दौरान प्रशस्त होता है। महात्मा गांधी ने पत्रों के द्वारा आत्मा, ईश्वर, मोक्ष, वेद, गीता तथा आर्यधर्म से संबंधित प्रश्नों की जिज्ञासा प्रस्तुत की।

गांधी के समय में राजनीति का तात्पर्य त्याग और तितिक्षा थी, उस समय सत्य और अहिंसा इसका आधार थी, किंतु जैसे-जैसे समय परिवर्तन होता गया राजनीति की परिभाषा भी बदलती गई। ठीक इसी प्रकार हम देखते हैं कि प्राचीन समय में महिलाओं को घर और पुरुषों की बाहर के काम की जिम्मेदारी होती थी, ऐसे में गांधी ने पहली बार स्त्री को घर से बाहर निकाला। 1917 में पहले सत्याग्रह,

चंपारण में कस्तूरबा को भी इसका हिस्सा बना लिया। इस तरह स्त्रियाँ घर से बाहर निकलीं और आंदोलन में उन्होंने भी स्थान लेना शुरू किया। पुस्तक का अंतिम हिस्सा गांधी जी पर कुछ लेखों का है जिन्हें अलग-अलग लेखकों ने लिखा है और इन लेखों में अधिकतम लेख गांधी जी पर तथा एक-दो लेख श्रीमद् राजचंद्र पर आधारित हैं। गांधी जी पर कुछ लेख तो महान विभूतियों के ही लिए गए हैं, जैसे—विनोबा भावे, जवाहरलाल नेहरू, राधाकृष्णन इत्यादि, लेकिन कुछ लेख आधुनिक विचारकों—पुरुषोत्तम अग्रवाल, सुजाता, आर.के. पालीवाल, कुमार प्रशांत आदि के हैं।

यह पुस्तक गांधी के जीवन और उनसे संबंधित कई भ्रमों का निवारण करने में सहायक तथा श्रीमद् राजचंद्र के रिश्ते को समझने में मददगार साबित होगी।

## विज्ञान और उसकी शिक्षा

टेलीविजन पर एक विज्ञापन में एक पात्र कहता है, "किसी देश के भविष्य को जानना हो तो उसके क्लासरूम को देखिए यानी बच्चों की पढ़ाई, शिक्षा व्यवस्था को।" बिलकुल दुरुस्त बात है। लेकिन 21वीं सदी में मैं इतना और जोड़ना चाहूँगा कि उनके स्कूलों में विज्ञान की शिक्षा से उस देश के भविष्य को और बेहतर समझा जा सकता है। विज्ञान की शिक्षा और सामाजिक विषयों की शिक्षा समेत पूरी शिक्षा व्यवस्था के लिए जितना मौलिक काम आजादी के बाद एकलव्य संस्थान, भोपाल के होशंगाबाद विज्ञान शिक्षण कार्यक्रम और दूसरी गतिविधियों ने किया है, उसका दूसरा उदाहरण शायद देशभर में नहीं है। इस पूरे प्रोग्राम और इनके प्रकाशनों की आत्मा को इस बात से भी समझा जा सकता है कि ज्यादातर मौलिक किताबें हिंदी में उपलब्ध कराई गई हैं और लगातार आज भी कर रहे हैं। नियमित अपनी पत्रिकाओं—चकमक, शैक्षिक संदर्भ और स्रोत के माध्यम से भी।

हम सब जानते हैं कि विज्ञान की शिक्षा उसके पढ़ाई-लिखाई का ढंग स्कूल से लेकर कॉलेज तक आजादी के बाद लगातार गिरता चला गया है। सी.वी. रमन, मेघनाथ साहा, जगदीश चंद्र बसु, होमी भाभा, शांति स्वरूप भटनागर जैसे वैज्ञानिक आजादी के तुरंत पहले की



समीक्षक : प्रेमपाल शर्मा

संकलन व संपा. : उमा सुधीर,

रश्मि पालीवाल

प्रकाशक : एकलव्य प्रकाशन,

भोपाल (मध्य प्रदेश)।

पृष्ठ : 312

मूल्य : रु. 200/-

पैदावार रहे हैं और उन्हीं की चमक में आजादी के तुरंत बाद नेहरू जी की दूरदृष्टि से आई.आई.टी. और दूसरे वैज्ञानिक संस्थान बनाए गए।

पुस्तक का सबसे महत्वपूर्ण पक्ष है अनुभवों के वृत्तांत यानी शिक्षक और उनकी कक्षा के बच्चों के विज्ञान की स्थापना, सिद्धांतों, क्रियाकलापों को समझने के दर्जनों अनुभव और पुस्तक के चार खंडों में तीन खंड इन्हीं अनुभवों की रोशनी में विज्ञान को समझने की कोशिश की गई है। उदाहरण के लिए, एकलव्य टीम की ही उमा सुधीर का पाठ है—‘ककड़ी कड़वी क्यों?’ बात बहुत सामान्य-सी है, लेकिन धीरे-धीरे उसकी परत खुलती हैं कि विज्ञान की समझ पैदा करने के लिए क्या-क्या कदम उठाए जाने चाहिए? पहले लोगों से पूछा तो उनकी मान्यता नोट की गई कि जो ककड़ी टेढ़ी-मेढ़ी होती है, वह कड़वी होती है या उसके सिरे ही सिर्फ कड़वे होते हैं। या किसी ने रंगों के आधार पर बताया कड़वापन तो किसी ने उसकी लंबाई के आधार पर। अब एक-एक करके बच्चों के साथ उसके प्रयोग किए गए और फिर निष्कर्ष तक पहुँचा गया कि कड़वे होने का कारण ये सब नहीं हैं, बल्कि उनकी पत्तियों में प्रकाश संश्लेषण से होने वाली प्रक्रिया है जो ककड़ी के अंदर तक पहुँचती है। तथ्य से ज्यादा महत्वपूर्ण बात यहाँ यह है कि सिर्फ सुनी हुई बातों या किसी बड़े या छोटे या बाबा या मौलवी मसीही के कहने से ही बातों को सच नहीं माना जाना चाहिए। उन पर संदेह, प्रश्न करने की आजादी होनी चाहिए। उसका विश्लेषण और सबक सभी पक्षों के लिए है बच्चों के लिए भी, शिक्षकों के लिए भी, बड़ों के लिए भी। आप आपसी संवाद से, प्रयोग से प्रदर्शन करके सिद्ध कीजिए। यहीं से वैज्ञानिक दृष्टि जन्म लेती है।

एक और ऐसा ही पाठ है रिनचिन का। माहवारी में महिलाओं के प्रति एशिया महाद्वीप का नजरिया बहुत नकारात्मक रहा है, भारत में विशेषकर। माहवारी के दिनों में अगर वे अचार डालें तो सड़ जाएगा, पौधे में पानी डालें तो मर जाएगा आदि तरह-तरह की धारणाएँ हैं। इस पाठ में भी बाकायदा महिलाओं और लड़कियों को विश्वास में लेकर प्रयोग किए गए। उनके हाथ से अचार डलवाए गए, पेड़ों में पानी दिया गया और फिर यह सिद्ध किया गया कि ऐसा आरोप गलत है। बहुत संवेदनशील प्रश्न है और अकसर भारतीय समाज की चहारदीवारों को देखते हुए कक्षा में बातें करना आसान नहीं हैं। लेकिन शिक्षा का पहला कदम, इन्हीं बातों, प्रश्नों से शुरू होगा तभी विज्ञान के कदम आगे बढ़ेंगे। ऐसा ही महत्वपूर्ण अध्याय रश्मि पालीवाल का है, ‘आया समझ में’। बात छोटी-सी है कि दिन-रात होते हैं, लेकिन बच्चों के स्कूल में छोटी से लेकर बड़ी कक्षा तक के अनुभव इसमें समाए हुए हैं। बात को तर्कपूर्ण ढंग से सोचने से बच्चे बेहतर समझते हैं।

अकसर हमारी पाठ्यपुस्तकें बेहद बोझिल होती हैं और उसका बहुत बड़ा कारण उनमें सैद्धांतिक पक्ष ज्यादा होता है, प्रायोगिक पक्ष बहुत कम। विज्ञान की शिक्षा के लिए यह लगभग जहर की तरह है।

यही कारण है कि हमारे इंजीनियर, डॉक्टर तक भी विज्ञान और वैज्ञानिक चेतना में अंतर न समझ पाते हैं, न कर पाते हैं और इसीलिए अधिकांश शिक्षकों से बात करते हुए भी यह अहसास होता है कि यदि शिक्षक ऐसे होंगे तो बच्चों में वैज्ञानिक चेतना कैसे आएगी?

आशा है कि कम-से-कम हिंदी पट्टी की 70 प्रतिशत आबादी की विज्ञान शिक्षा को तो ऐसी किताबें बदल ही सकती हैं। अंग्रेजी के बढ़ते प्रभाव ने हिंदी की ऐसी किताबों को उन स्कूलों की पहुँच से और भी दूर कर दिया है। यह प्रश्न हिंदी और अंग्रेजी का नहीं, उस समाज के विकास का है जो शिक्षा से ही संभव है। उम्मीद है ऐसी किताबें आज नहीं तो कल सिर्फ स्कूलों का नक्शा ही नहीं बदलेंगे। देश का नक्शा और मिजाज दोनों बदल देंगी।

## हिमाचल प्रदेश की रोचक लोक कथाएँ



समीक्षक : डॉ. अदिति गुलेरी

लेखक : डॉ. आर. वासुदेव प्रशांत

रश्मि पालीवाल

प्रकाशक : कुणाल प्रिंटिंग एंड पब्लिशिंग कं. धर्मशाला (हिमाचल)।

पृष्ठ : 160

मूल्य : रु. 200/-

लोक कथाएँ समाज व सभ्यता की वे कथाएँ होती हैं जो मौखिक तौर पर उस समाज व सभ्यता में एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक जाती हैं। इन कथाओं का मुख्य उद्देश्य सभ्यता व समाज के ज्ञान, समझ, नैतिक मूल्य और प्रत्येक जानकारी को आम मानस तक पहुँचाना होता है। हर देश व प्रदेश की अलग-अलग लोक कथाएँ उस देश व प्रदेश की लोक संस्कृति की संवाहक होती हैं। डॉ. आर.

वासुदेव प्रशांत द्वारा रचित पुस्तक ‘हिमाचल प्रदेश की रोचक कथाएँ’ 44 लोक कथाओं का सुंदर गुलदस्ता है। ये लोक कथाएँ अपने आस-पास के परिवेश से जुड़ी लगती हैं और हर कथा कोई-न-कोई संदेश देती प्रतीत होती है। इन कथाओं में हिमाचल की माटी की भीनी-भीनी गंध महसूस होती है। इन लोक कथाओं में भाषा की आंचलिकता है। नयेपन को दिखाने में लेखक ने कहीं भी परंपरा से खिलवाड़ नहीं किया है।

लोक कथाओं का समायोजन एवं संग्रह आज के युग की आवश्यकता है। आज पुस्तकों को पढ़ने की वृत्ति विलुप्त होती जा रही है। आज टीवी, कंप्यूटर, मोबाइल, इंटरनेट आदि ने बच्चों के बचपन और युवाओं के यौवनकाल को पूरी तरह से लील लिया है। ये सब उनके मन पर हावी हो चुके हैं। बच्चों व युवाओं के पास न तो

समय है और न ही पढ़ने की इच्छा या जिज्ञासा। डॉ. आर. वासुदेव प्रशांत द्वारा लोक साहित्य और लोक कथाओं की धरोहर को सहेजने का अभूतपूर्व प्रयास किया गया है।

इस पुस्तक में प्रदेश में प्रचलित रोचक कथाओं का वर्णन किया गया है। 'तोता और कौवा', 'चतुर बिल्ली और चालू सियार', 'गीदड़ की होशियारी' और 'कद्रू और चूहे' जैसी कथाओं में जहाँ रोचकता का पहलू प्रबल है तो 'छोटी बहू की समझदारी', 'सेवा का फल' और 'शेर की कथाएँ' उपदेश और दिशानिर्देश का भाव लिए हुए हैं। सभी कथाओं में विविधता है जिससे रोचकता बराबर रहती है। प्रस्तुत संग्रह में संकलित कहानियाँ बाल-मनोविज्ञान बाल-व्यक्तित्व के विकास में उतना ही अपेक्षित और महत्वपूर्ण है जितना पहले कभी था।

पहले समय में कथा सुनाने वालों को 'काथू' कहा जाता था। इन्हें कथाएँ सुनाने के लिए विशेष तौर पर आमंत्रित किया जाता था। ये लोग महीनों कथाएँ सुनाते रहते। जिस प्रकार जागरण की रात को भजन मंडलियों को बुलाया जाता है उसी प्रकार से काथू भी बुलाए जाते थे। इसके साथ गाँव के बड़े-बुजुर्ग स्वयं भी कई कथाएँ जानते थे और सुनाते थे। काथू की तरह कुछ लोग गप्प सुनाने वाले भी होते थे।

गल्प साहित्य ही लोक कथा साहित्य में समाहित हो गया। प्रस्तुत पुस्तक की प्रेरणा-स्रोत बुधणी बोबो भी एक जीवंत किरदार है जो गप्पें मारने में बहुत प्रवीण थी। कहने का अभिप्राय यह है कि वह अनपढ़ लोक कथा वाचकों का कथा-शिल्प इतना सरल और हृदय को स्पर्श करने वाला होता था कि सब बड़ी रुचि और जिज्ञासा से सुनने और उसके रस एवं आनंद में मग्न हो जाते थे।

हिमाचल की रोचक लोक कथाएँ निस्संदेह कभी खत्म न होने वाली बातों और कहानियों का संग्रह है। राजा और रानियों की बातें, राजकुमार और राजकुमारियों की बातें, राक्षसों, दानवों और दैत्यों की रोचक और कभी-कभी डरावनी बातें, पौराणिक पात्रों और आख्यानों की बातें, न जाने और भी क्या कुछ। ये सब बातें या कथाएँ मानव जीवन में बहुत महत्व रखती हैं। इनके माध्यम से जन-जीवन में आने वाली समस्याओं के समाधान और लोक कल्याण की भावना निहित रहती है।

अब न कथा सुनाने वाले रहे और न ही सुनने वाले। यह परंपरा धीरे-धीरे समाप्त हो रही है। यहाँ तक कि दादा-दादी, नाना-नानी से भी अब बच्चा कथा नहीं सुनता। डॉ. वासुदेव प्रशांत जी ने प्रस्तुत संग्रह के लेखन-संपादन का श्रमसाध्य प्रयास कर इसे मूर्त रूप दिया है।

## साहित्यिक गतिविधियाँ



### ऑनलाइन बुक पब्लिशिंग कोर्स का उद्घाटन

मानव संसाधन विकास मंत्रालय के अधीन स्वायत्तशासी संस्था राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत में तीन महीने चलने वाले पहले ऑनलाइन बुक पब्लिशिंग कोर्स का उद्घाटन 26 जून, 2020 को किया गया। उद्घाटन सत्र में न्यास के अध्यक्ष प्रो. गोविंद प्रसाद शर्मा ने प्रतिभागियों को बदलते समय में प्रकाशन उद्योग की प्रासंगिकता के बारे में बताया। उन्होंने कहा, "हमारे समाज और सीखने के माध्यम में तेजी से बदलाव आया है, और प्रकाशन उद्योग इन परिवर्तनों से अछूता नहीं है। वर्तमान समय में औसत के लिए कोई स्थान नहीं है, हर एक को असाधारण रूप से कुशल होने की आवश्यकता है।" इस अवसर पर प्रतिभागियों को संबोधित करते हुए न्यास के निदेशक श्री युवराज मलिक ने कहा कि प्रकाशन उद्योग के लिए प्रशिक्षित पेशवरों का

एक संघ बनाने के उद्देश्य से राष्ट्रीय पुस्तक न्यास पिछले कई वर्षों से दिल्ली में प्रतिवर्ष महीनों लंबे पब्लिशिंग कोर्स और देश भर में अल्पावधि पब्लिशिंग कोर्स आयोजित कर रहा है। हालाँकि, समय की माँग के साथ-साथ न्यास ने पहली बार ऑनलाइन पब्लिशिंग कोर्स शुरू किया है। श्री मलिक ने यह भी रेखांकित किया कि न्यास ने स्वतंत्रता के बाद से भारत की प्रामाणिक, सार्थक कहानियों के प्रकाशन के साथ-साथ पुस्तक पठन-पाठन को बढ़ावा देने में महती भूमिका निभाई है। न्यास के वरिष्ठ संपादक कुमार विक्रम ने कहा कि प्रकाशन की पूरी प्रक्रिया में एक संपादक की भूमिका अहम होती है। पांडुलिपियों में दर्ज शब्दों के रूप में लेखक की ऊर्जा को पुस्तक का रूप देना एक संपादक की जिम्मेदारी है।

### न्यास ने शुरू किया यूट्यूब चैनल

राष्ट्रीय पुस्तक न्यास ने पठन-पाठन परंपरा को अक्षुण्ण बनाए रखने के लिए कोरोना काल के दौरान आकाशवाणी के माध्यम से 'स्टोरी लाउंज' कार्यक्रम शुरू किया जिसमें हर दिन न्यास द्वारा प्रकाशित एक पुस्तक की कहानी सुनाई गई। ये कहानियाँ यूट्यूब चैनल '<https://www.youtube.com/user/NBTIndia>' पर सुनी जा सकती हैं।

**YouTube**

### आपकी राय का स्वागत है

'पुस्तक संस्कृति' पत्रिका में प्रकाशित सामग्री पर आपके सुझाव, राय का सदैव स्वागत है। देश-दुनिया के साहित्यिक-सांस्कृतिक परिवेश, प्रकाशन जगत की गतिविधियों पर आपकी सम्मति के लिए इस स्थान पर आपके पत्र/ईमेल की प्रतीक्षा है।

**संपर्क :**

**संपादक**, पुस्तक संस्कृति, राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत, नेहरू भवन, 5, इंस्टीट्यूशनल एरिया, फेज-2, वसंत कुंज, नई दिल्ली-110070.

दूरभाष : 267-07758/07876/07700

ईमेल : editorpustaksanskriti@gmail.com



## विश्व के सबसे बड़े क्वारंटाइन सेंटर में राष्ट्रीय पुस्तक न्यास की पुस्तकें

दिल्ली के छतरपुर में कोविड-19 से पीड़ित लोगों के लिए बनाए गए विश्व के सबसे बड़े 'सरदार पटेल क्वारंटाइन सेंटर' में राष्ट्रीय पुस्तक न्यास की पुस्तकों का पुस्तकालय स्थापित किया जा रहा है ताकि मरीज ज्ञानवर्धक, सूचनाप्रद और मनोरंजक पुस्तकों के साथ अपने एकांतवास के समय का सदुपयोग कर सकें। इस उद्देश्य से न्यास द्वारा एक हजार से अधिक पुस्तकों व 'पुस्तक संस्कृति' व 'पाठक मंच बुलेटिन' पत्रिकाओं की सौ-सौ प्रतियाँ दिल्ली के सचेतक श्री दिलीप पाण्डेय को

विदित हो कि राष्ट्रीय विकास मंत्रालय के अधीन संक्रमण काल में कई ऐसे कार्य समाज इस संकट की घड़ी में सकारात्मक रहे। इसी श्रृंखला प्रयोग किया जा रहा है। निदेशक श्री युवराज मलिक कोरोनाग्रस्त लोगों को एक हैं जो उनके जल्दी रोगमुक्त



विधायक और सदन में मुख्य सौंपी गई।

पुस्तक न्यास (मानव संसाधन एक स्वायत्त संस्था) कोरोना कर रहा है जिससे पठनशील स्वस्थ, तनावमुक्त और में दिल्ली सरकार के साथ यह राष्ट्रीय पुस्तक न्यास के का कहना है कि अच्छी पुस्तकें सात्विक-मानसिक खुराक देती होने में सहायक होता है।

उल्लेखनीय है कि पूर्व में **गाजियाबाद के क्वारंटाइन सेंटर में राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत की पुस्तकें** गाजियाबाद के क्वारंटाइन सेंटर में किए गए इस तरह के प्रयोग के सकारात्मक परिणाम रहे हैं और वहाँ से परिणाम आए थे कि राष्ट्रीय पुस्तक न्यास की पुस्तकें क्वारंटाइन सेंटर में आए लोगों के जीवन में बड़ा बदलाव लाने में सक्षम हैं। प्रायः 14 दिनों के एकांतवास में लोग अपना समय मोबाइल पर खर्च करते हैं, लेकिन पुस्तकों का साथ होने पर वे जब यहाँ से जाएँगे तो उनके पास ज्ञान, सूचना, जिज्ञासा का एक ऐसा खजाना होगा जो उनके साथ जीवनभर रहेगा और क्वारंटाइन सेंटर के दिन उन्हें एक उपलब्धि की तरह प्रतीत होंगे। राष्ट्रीय पुस्तक न्यास समाज के हर वर्ग को अच्छी पुस्तकें पढ़ने के लिए प्रेरित करने के लिए सतत प्रयासरत है।

### नए न्यास मंडल का गठन

मानव संसाधन विकास मंत्रालय के अधीन स्वायत्तशासी संस्था राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत के नए न्यास मंडल का गठन किया गया है, जो इस प्रकार है—**1.** अतिरिक्त सचिव/संयुक्त सचिव—पुस्तक प्रोन्नयन संभाग, मा.सं.वि. मंत्रालय, भारत सरकार; **2.** सं. सचिव एवं वित्तीय सलाहकार—पुस्तक प्रोन्नयन संभाग, मा.सं.वि. मंत्रालय, भारत सरकार; **3.** अध्यक्ष—साहित्य अकादेमी; **4.** सं. सचिव—सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार; **5.** प्रो. हरजीभाई नारायणभाई वघेला—हिंदी विभागाध्यक्ष, महाराजा कृष्णकुमार सिंह जी भावनगर यूनिवर्सिटी; **6.** प्रो. अरुण कुमार भगत—इंदिरापुरम, गाजियाबाद; **7.** श्री प्रभात कुमार—प्रभात प्रकाशन; **8.** डॉ. सी.एन. शंकरा राव—लेखक, समाज शास्त्र, मंगलुरु; **9.** डॉ. योगेंद्र नाथ शर्मा 'अरुण'—सेवानिवृत्त प्राचार्य बी.एम.एस. (पीजी) कॉलेज, रुड़की; **10.** श्री ई.एन. नंदकुमार—पूर्व अध्यक्ष, अंतराष्ट्र पुस्तकोत्सव समिति, कोच्चि; **11.** श्री अरिंदम मुखर्जी—सदस्य सह सचिव, इंस्टीट्यूट ऑफ सोशल एंड कल्चरल स्टडीज; **12.** श्री संजय पंकज—मुजफ्फरपुर; **13.** डॉ. सुष्मिता पांडे—पूर्व अध्यक्ष, राष्ट्रीय स्मारक प्राधिकरण, संस्कृति मंत्रालय; **14.** डॉ. सुधा मूर्ति—अध्यक्ष, इन्फोसिस फाउंडेशन; **15.** प्रो. रजनीश कुमार शुक्ला—कुलपति, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा; **16.** श्री आशुतोष भटनागर—कार्यकारी निदेशक, जम्मू-कश्मीर स्टडी सेंटर, दिल्ली; **17.** श्रीमती अनीता भटनागर जैन—आई.ए.एस. (सेवानिवृत्त); **18.** श्री त्रिलोकी नाथ सिंह—इंदिरा नगर, लखनऊ।

# राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत ने मनाया 64वाँ स्थापना दिवस



“पुस्तक संस्कृति हमें आनेयें में सशक्त करेगी। ऊर्जा देगी। न्यास की पुस्तकों के प्रति पाठकों का अनुराग है—इसकी विषयवस्तु, मुद्रण, कीमत—सभी कुछ आम पाठकों के अनुरूप होती हैं। न्यास के पास साधन हैं और दृष्टि भी, और वह अपने प्रगति पथ पर इसी तरह बढ़ता चला जाएगा।” उक्त विचार लोकप्रिय प्रकाशक और न्यास मंडल के सदस्य प्रभात कुमार ने एक वेब सेमिनार में मुख्य अतिथि की आसंदी से व्यक्त किए। उन्होंने कोरोना काल में मनोवैज्ञानिक अध्ययन पर आधारित पुस्तकों के प्रकाशन की प्रशंसा की। वे राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत (मानव संसाधन विकास मंत्रालय) की स्थापना के 64 वर्ष के अवसर पर बोल रहे थे। उन्होंने न्यास को डिजिटल जगत में और अधिक पुस्तकें लाने का सुझाव दिया।

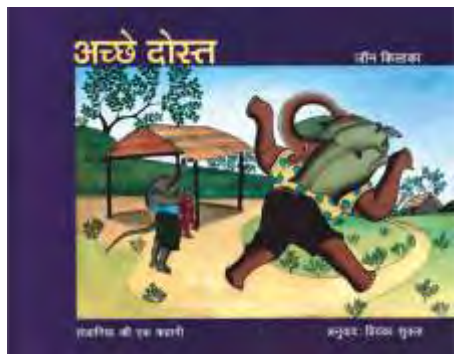
इस अवसर पर न्यास के अध्यक्ष प्रो. गोविंद प्रसाद शर्मा ने कहा कि राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत की स्थापना वर्ष 1957 में भारतीय भाषाओं में अच्छे साहित्य के उत्पादन को प्रोत्साहित करने और इस तरह के साहित्य को सस्ती कीमतों पर उपलब्ध कराने के उद्देश्य से की गई थी। न्यास ने अपने दायित्व को बखूबी निभाया है और देश के दूरस्थ अंचलों तक के पाठकों के लिए उनकी अपनी बोली-भाषा में प्रकाशन किए हैं।

इस अवसर पर न्यास के निदेशक श्री युवराज मलिक ने कहा कि ‘ट्रस्ट’ विश्वास का प्रतीक है। हमारे पाठक, प्रकाशक, लेखक सभी को इस पर विश्वास है। न्यास की 63 साल की यात्रा को याद करते हुए श्री मलिक ने कहा कि “एक राष्ट्रीय संस्थान के रूप में, हम अपनी भूमिका और हमारे लेखकों, पाठकों और अन्य हितधारकों की अपेक्षाओं के प्रति काफी सचेत हैं। मैं हमेशा कहता हूँ कि राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत केवल एक प्रमुख राष्ट्रीय संस्थान ही नहीं है, बल्कि हमारा जनादेश अंतरराष्ट्रीय मंचों पर हमारी पहुँच को संभव बनाता है जहाँ हम भारतीय प्रकाशन उद्योग और इसकी उपलब्धियों का प्रदर्शन और प्रतिनिधित्व करने में सक्षम हैं”।

इस कार्यक्रम का संचालन न्यास की मुख्य संपादक व संयुक्त निदेशक नीरा जैन ने किया।



## बच्चों के लिए कुछ नई पुस्तकें





## साकार होते सपने : उद्योग से उपजी प्रेमकथा

**प्रमोद कुमार अग्रवाल**

साहित्य क्षेत्र में प्रायः शुष्क माने जाने वाले विषय 'उद्योग' को आधार बनाकर लिखे गए इस उपन्यास में प्रेम का एक ऐसा झरोखा भी है जहाँ दो दिलों का मिलन होता है जिसे परिस्थिति का साथ मिलता है और अंततः दोनों के सपने साकार होते हैं। उपन्यास

का नायक राजू नोटझीर सिलवासा में रहकर उद्योग संचालन के सूत्र सीखता है और लौटकर अपने पुराने कार्यस्थल पर बतौर साझीदार नई जिंदगी की शुरुआत करता है।

सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली।

पृ. 160; रु. 250.00

## रामचरितमानस : एक नई दृष्टि

**डॉ. महावीर प्रसाद चंसौलिया**

पुस्तक अपने शीर्षक के अनुरूप भारत के सर्वाधिक लोकप्रिय ग्रंथ 'तुलसीदासकृत रामचरितमानस' को नए परिप्रेक्ष्य में एक नई दृष्टि से देखने का एक प्रयास है। इस कृति में राम, सीता तथा मानस के विविध पात्रों एवं उनसे जुड़ी कथा-उपकथा के अनेक अनछुए पहलुओं पर प्रकाश डालते हुए एक मौलिक उद्भावना का उद्घाटन हुआ है। धरा-पुत्री सीता के अग्निवास का रहस्य, श्रीराम का पत्नीव्रत होना, सीताहरण आदि की नवीन व्याख्या के कारण पुस्तक पाठकों का ध्यान आकर्षित करती है।



जनता ऑफसेट प्रिंटर्स, ग्वालियर।

पृ. 60; रु. 201.00

## निशां चुनते-चुनते

**विवेक मिश्र**

पुस्तक चर्चित कथाकार विवेक मिश्र की 21 श्रेष्ठ कहानियों का संग्रह है। समकालीन हिंदी कथाजगत में विवेक मिश्र एक चर्चित एवं लोकप्रिय नाम हैं जिनकी कहानी के साथ-साथ उपन्यास लेखन में भी समान रुचि और अधिकार हैं। संग्रहीत कहानियों में जहाँ वर्तमान समय, समाज और सरोकार अपनी पूरी शिद्दत के साथ उपस्थित है वहीं हमारे समय की विसंगति, विद्रूपता और विडंबना भी स्पष्ट परिलक्षित होती है। इन कहानियों से होकर गुजरना अपने समय और समाज को समझने का भी उपक्रम है।



डायमंड बुक्स, दिल्ली।

पृ. 192; रु. 200.00



**बलवा**

**मुख्तार अब्बास नकवी**

उपन्यास सन् नब्बे के दशक की घटनाओं पर आधारित फिक्शन है, पर उपन्यास के पात्र आज भी हमारे समाज में यदा-कदा दिख जाते हैं। सियासत और तथाकथित मजहबी रहनुमाओं की साँठ-गाँठ के साथ आम आदमी की भावनाओं के साथ खिलवाड़ उपन्यास का कथानक है। उपन्यास के लेखक एक राजनीतिज्ञ होते हुए भी साहित्य-संस्कृति से अनुराग रखते हैं और समय-समय पर सामाजिक सरोकार से जुड़ा लेखन करते रहते हैं।

डायमंड बुक्स, दिल्ली।

पृ. 104; रु. 195.00



## संवाद के दायरे में साहित्य

**रोहित कौशिक**

साक्षात्कार विधा के माध्यम से अपने समय, समाज सरोकार और समकालीन के अलावा विगत व्यक्तित्वों से भी संवाद किया जा सकता है। साहित्यकार के वे विचार जो उनकी कृतियों में नहीं आ पाते, साक्षात्कार में जगह पा जाते हैं। प्रस्तुत पुस्तक में 13 लेखकों के साक्षात्कार संग्रहीत हैं। इनमें से कुछ दिवंगत हो चुके

हैं। ये साक्षात्कार पाठकों को अनेक नई जानकारियाँ और सूचनाएँ दे सकते हैं।

यश पब्लिकेशंस, नई दिल्ली।

पृ. 140; रु. 350.00

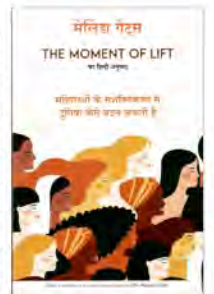
## द मोमेंट ऑफ लिफ्ट (हिंदी अनुवाद)

**मेलिंडा गेट्स**

“हमारा उद्देश्य स्त्रियों को ऊपर उठाना है और जब हम सब इस उद्देश्य में एकजुट होंगे तो हम ऊपर उठ रहे होंगे।” दुनिया के सर्वाधिक धनवान व्यक्ति बिल गेट्स की पत्नी मेलिंडा गेट्स जब यह कहती हैं तो महिला अधिकार के लिए लड़ने वालों और नारीवादियों को स्वाभाविक तौर पर अच्छी अनुभूति होगी। यह पुस्तक आर्थिक साम्राज्य के शिखर पर पहुँची उस महिला के जीवनानुभवों की कहानियाँ कहती है जिसमें स्त्री को पुरुष के बराबर मानने, समझने और तदनु रूप सम्मान देने की भावना निहित है।

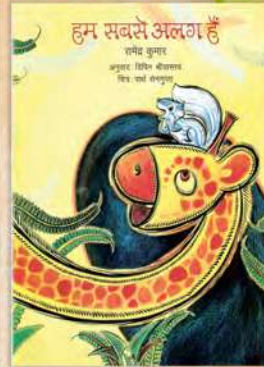
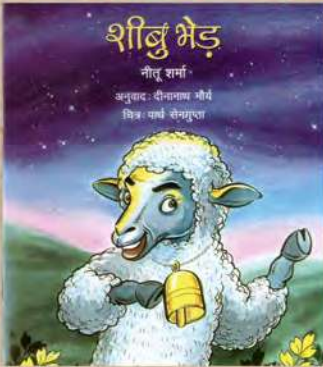
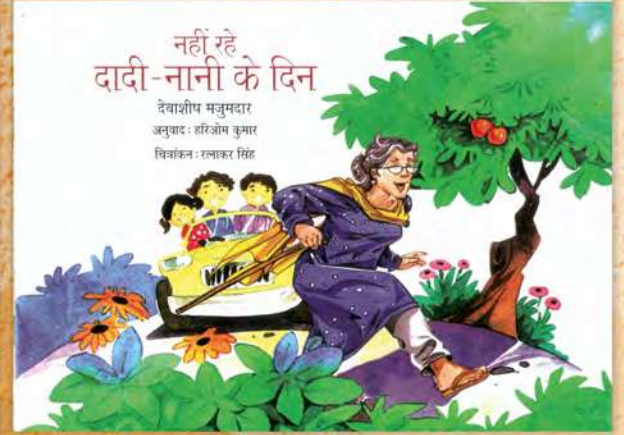
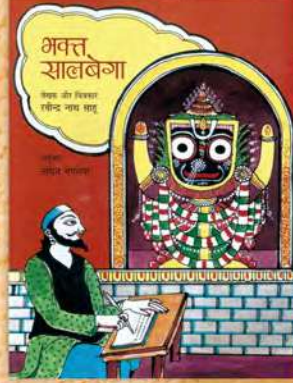
मंजुल पब्लिशिंग हाउस, भोपाल।

पृ. 278; रु. 350.00

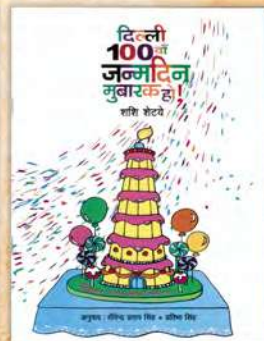
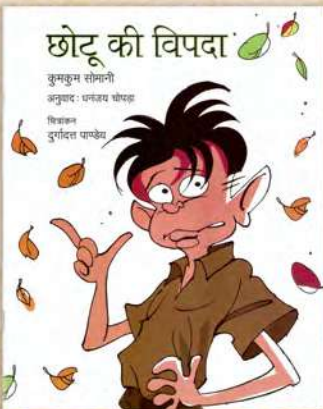


# हो स्नेह अपार, दें पुस्तकें उपहार

राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत के कुछ नए प्रकाशन



राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत व इलाहाबाद विश्वविद्यालय के संयुक्त तत्वावधान में आयोजित कार्यशाला में अनूदित बच्चों के लिए कुछ पुस्तकें।



## राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत

मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार

नेहरू भवन, 5 इंस्टीट्यूशनल एरिया, फेज़-II, वसंत कुंज, नई दिल्ली-110070

फोन : 011-26707761 • ई-मेल : nro.nbt@nic.in • वेबसाइट : www.nbtindia.gov.in